# अनौपचारिका

समकालीन शिक्षा-चिन्तन की मासिक पत्रिका

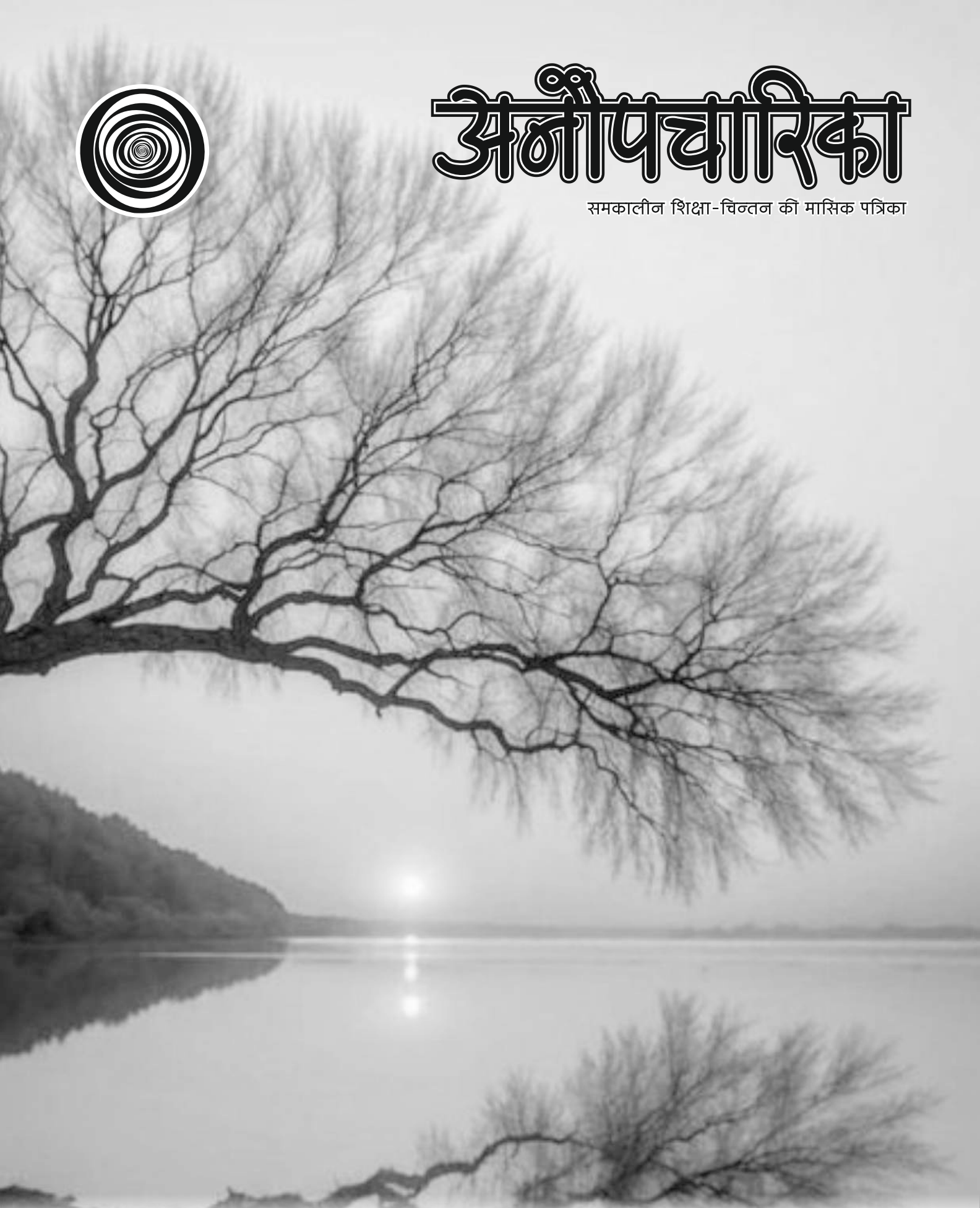

वर्ष : 53 अंक : 2 माघ–फाल्गुन वि.सं. 2082 फरवरी, 2026 पृष्ठ–28 RNI 43602/77 ISSN No.2581-981x

# समिति में गणतंत्र दिवस पर झंडारोहण

गणतंत्र दिवस पर राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति में परंपरागत रूप से उत्साह के साथ झंडारोहण कार्यक्रम आयोजित किया गया।

वनस्पति व पर्यावरण विशेषज्ञ तथा लेखक तथा समिति के सदस्य देवेन्द्र भारद्वाज ने ध्वजारोहण किया। उनके साथ राजस्थान विश्वविद्यालय में वनस्पति शास्त्र विभाग के अध्यक्ष रहे 94 वर्षीय सुधाकर मिश्रा भी मौजूद थे।

इस अवसर पर श्री प्रहलाद शर्मा तथा प्रेम गुप्ता जैसे समिति के पुराने सहयोगी भी उपस्थित थे। तमिलनाडु से आये कुछ किसान प्रतिनिधि भी इस आयोजन में शामिल हुए।

इस अवसर पर समिति सहयोगी रामेश्वर प्रसाद ने गणतंत्र दिवस की महत्ता बताने वाले स्व-रचित कविता सुनाई। ❑

## समिति में एनसीईआरटी कार्यशाला

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद के प्रारंभिक शिक्षा विभाग ने राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति के सहयोग से दो दिन की एक कार्यशाला का आयोजन किया जिसमें उत्तरी राज्य – जम्मू, कश्मीर, पंजाब, हरियाणा, चंडीगढ़, उत्तराखंड और उत्तर प्रदेश से आये प्रतिभागी शामिल हुए।

प्रारम्भिक शिक्षा विभाग, एनसीईआरटी, द्वारा राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा – आधारभूत अवस्था 2022 के अनुरूप आधारभूत स्तर के बच्चों के लिए विकसित 'जादुई पिटारा' के प्रभावी क्रियान्वयन के लिए शिक्षक-शिक्षकों के लिए यह उन्मुखीकरण कार्यशाला आयोजित की गई थी।

कार्यशाला में कक्षा स्तर पर अधिगम-शिक्षण सामग्री के प्रभावी उपयोग से संबंधित व्यावहारिक समझ विकसित की गई।❑

खामेमि सव्व-जीवे, सव्वे जीवा खमंतु मे
मित्ती मे सव्व-भूएसु, वेरं मज्झ न केणइ

-जैन प्रतिक्रमण सूत्र **49**

मैं सभी प्राणियों को क्षमा करता हूँ। मैं सभी प्राणियों से क्षमा मांगता हूँ। मैं सभी प्राणियों के प्रति मित्रता रखता हूँ। मैं किसी से शत्रुता नहीं रखता।

समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सहचित्तमेषाम्।
समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि।।
समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति।। ऋग्वेद


# अनौपचारिका

समकालीन शिक्षा-चिन्तन की पत्रिका

वर्ष : 53 अंक : 2 माघ-फाल्गुन वि.सं. 2082 फरवरी, 2026 मूल्य : पचास रुपये


## क्र म


**वाणी**

3. जैन प्रतिक्रमण सूत्र

**संपादकीय**

5. सवाल क्या है ?

**लेख**

7. समझना पैसों के मनोविज्ञान को
**– मॉर्गन हाउज़ल**

10. भावनाओं का रहस्मय संसार
**– एंटोनियो दामासियो**

12. अविश्वसनीय पर सच मस्तिष्क के विलक्षण क्रियाकलाप
**– डॉ. श्रीगोपाल काबरा**

14. भारतीय शोधकर्ताओं ने खोजी नई आकशागंगा
**– प्रो. प्रकाश नारायण कल्ला**

**अभिमत**

16. विनम्रता और शालीनता !
**– निरुपमा राव**

17. एआई का गुब्बारा जल्दी फूटने वाला नहीं
**– प्रोफेसर बी रविन्द्रन**

19. स्वास्थ्य में निवेश बिना जीडीपी का उछाल माने नहीं रखेगा!
**– रमणन लक्ष्मीनारायण**

21. पड़ोस वह जगह है जहां हम गरिमा से रहते हैं ।
**– शाहना रफ़ीक़**

23. एआई बहुतों के लिए आर्थिक मंदी का सबब हो सकता है !
**– रिचर्ड सस्किंड**

**खबर**

26. साल का सबसे खराब जर्मन शब्द
**– डॉ. लता व्यास**

**श्रद्धांजलि**

27. सिनेमा को गिरमा देने वाले बेला टार्र नहीं रहे


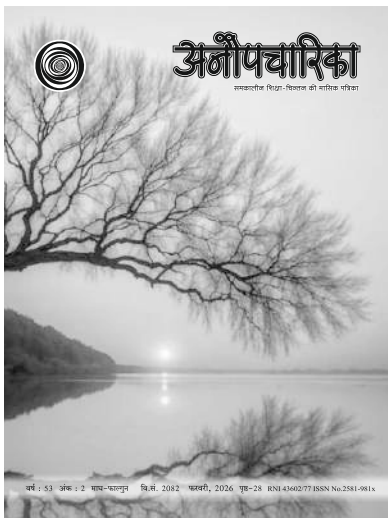



राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति
**7–ए, झालाना डूंगरी संस्थान क्षेत्र,**
**जयपुर–302004**
फोन : 2700559, 2706709, 2707677
ई-मेल : raeajaipur@gmail.com
www.raea.in

संपादक :
**राजेन्द्र बोड़ा**
प्रबंध संपादक :
**दिलीप शर्मा**

# सवाल क्या है?

दार्शनिक लानी वॉटसन, जिनका जीवन भर का जुनून सवालों का दर्शन रहा है, मानती हैं कि अगर हम अपनी ज़िंदगी को बेहतर बनाना चाहते हैं, तो हमें यह पूछकर शुरुआत करनी चाहिए: सवाल क्या है? हमें सवालों की भूमिका को समझना और यह देखना जरूरी है कि एक सवाल क्या करता है, और हम सवालों के साथ क्या करते हैं? में

सच में कुछ सवाल बिना किसी जवाब की उम्मीद के पूछे जाते हैं। कुछ के तो कोई जवाब होते ही नहीं। यह भी कह सकते हैं कि, सवाल जवाब के लिए नहीं होते; वे अपने आप में मायने रखते हैं। वैसे यह विचार भी नया नहीं है। 1929 में, फेलिक्स एस. कोहेन ने अपने एक निबंध, सवाल क्या है? में इस पर चर्चा की थी। उन्होंने तर्क दिया कि सवाल सिर्फ़ सोच की शुरुआती लाइन नहीं हैं, जो सिर्फ़ मंज़िल तक पहुँचने के लिए उपयोगी हों। उनका कहना था कि फ़िलॉसफ़ी में, जवाबों से ज़्यादा सवाल मायने रखते हैं। उन्होंने लिखा, जिन्होंने दुनिया की समस्याओं को सामने रखा है, वे अक्सर उन लोगों के मुकाबले 'दार्शनिक' कहलाने के ज़्यादा हकदार रहे हैं, जिन्होंने उन्हें सुलझाया है। यह बयान नीत्शे, विट्गेन्स्टाइन और पॉल फेयरबेंड जैसे दिग्गजों की याद दिलाता है, जिनके सवाल आज भी हमारे दिमाग में गूंजते हैं।

अगर किसी ने सच में पूछताछ की भावना को अपनाया था, तो वह सुकरात था। प्लेटो के डायलॉग्स एक ऐसे आदमी की तस्वीर पेश करते हैं जो सवाल पूछने के लिए इतना समर्पित था कि उसका मशहूर ऐलान - बिना जांचा-परखा जीवन जीने लायक नहीं है - 2,400 से ज़्यादा सालों बाद भी गूंजता है।

मगर यह हैरानी की बात है कि इतिहास के महान सवाल पूछने वाले फिलॉसफर शायद ही कभी यह सोचने के लिए रुके हों कि सवाल असल में होते क्या हैं। आखिर, फिलॉसफी सवालों पर ही तो बनी है।

हमारे डेटा-संचालित युग में, सब कुछ हमें समाधान देने के लिए डिज़ाइन किया गया लगता है। हर दिन, गूगल चौंका देने वाले 13.7 बिलियन सर्च प्रोसेस करता है - यानी साल में लगभग 5 ट्रिलियन। ए आई चैटबॉट के बढ़ते सागर के बीच, अकेला चैट जीपीटी रोज़ाना एक बिलियन से ज़्यादा सवालों को हैंडल करता है। जवाबों की इस बाढ़ से घिरे, हम निश्चितताओं की ओर

तेज़ी से बढ़ते हैं, शायद ही कभी उस शांत लेकिन शक्तिशाली पल पर ध्यान देने के लिए रुकते हैं – वह पल जब हम कोई सवाल पूछते हैं। हालाँकि हम पूरे दिन सवाल पूछते रहते हैं, लेकिन वे जानकारी पाने के लिए ऑटोमैटिक ट्रिगर से ज़्यादा कुछ नहीं रह गए हैं, जल्दी जवाब पाने की हमारी ज़िद ने उनकी असली क्षमता को खत्म कर दिया है।

मनुष्य को अन्य प्राणियों से अलग करने वाली सबसे मूलभूत विशेषता उसका सवाल करना है। प्रश्न केवल जानकारी पाने का साधन नहीं, बल्कि चेतना की वह चिंगारी है जिससे विचार, विवेक और दर्शन जन्म लेते हैं। जहाँ सवाल समाप्त हो जाते हैं, वहाँ सोच ठहर जाती है और समाज जड़ता की ओर बढ़ने लगता है।

दर्शन की शुरुआत ही प्रश्न से होती हैमैं कौन हूँ? यह संसार क्या है? सत्य क्या है? जीवन का उद्देश्य क्या है? सुकरात से लेकर बुद्ध तक, कबीर से लेकर कांट तक, सभी दार्शनिक परंपराओं में प्रश्न को केंद्रीय स्थान प्राप्त है। सुकरात का कथनमैं इतना ही जानता हूँ कि मैं कुछ नहीं जानतादरअसल प्रश्न के प्रति विनम्रता की घोषणा है। यह स्वीकारोक्ति ज्ञान की नहीं, बल्कि जिज्ञासा की विजय है।

सवाल सत्ता के लिए असुविधाजनक होते हैं, लेकिन समाज के लिए अनिवार्य। जब प्रश्न पूछने की स्वतंत्रता सीमित होती है, तब विचारधारा कठोर और व्यवस्था दमनकारी हो जाती है। इतिहास गवाह है कि हर अधिनायकवादी सत्ता ने सबसे पहले प्रश्नों को अपराध घोषित किया। इसके विपरीत, लोकतंत्र की आत्मा सवालों में बसती हैपत्रकार के सवाल, नागरिक के सवाल, विद्यार्थी के सवाल। सवाल पूछना केवल अधिकार नहीं, बल्कि सामाजिक जिम्मेदारी भी है।

दर्शन में प्रश्न का एक और आयाम हैआत्मालोचन। बाहरी दुनिया से अधिक कठिन प्रश्न वे होते हैं जो हम स्वयं से पूछते हैं। क्या मैं ईमानदार हूँ? क्या मेरे मूल्य मेरे व्यवहार में दिखाई देते हैं? क्या मेरी चुप्पी भी किसी अन्याय की साझेदार है? ऐसे प्रश्न आत्मा को असहज करते हैं, पर यही असहजता व्यक्ति को नैतिक रूप से परिपक्व बनाती है।

आज के समय में सूचनाओं की भरमार है, लेकिन सवालों की कमी। सोशल मीडिया ने उत्तरों को त्वरित बना दिया है, पर प्रश्नों को सतही। हम अक्सर पहले से बने उत्तर ढूँढते हैं, नए प्रश्न गढ़ने का धैर्य नहीं रखते। यह स्थिति खतरनाक है, क्योंकि बिना गहरे सवालों के ज्ञान केवल उपभोग की वस्तु बन जाता है, विवेक का साधन नहीं।

सवालों का दर्शन यह भी सिखाता है कि हर प्रश्न का तत्काल उत्तर आवश्यक नहीं। कई प्रश्न ऐसे होते हैं जो हमें जीवन भर साथ लेकर चलते हैं और हमें निरंतर खोज में बनाए रखते हैं। रवींद्रनाथ ठाकुर ने कहा था कि जीवन का सौंदर्य उत्तरों में नहीं, खोज में है। यही खोज प्रश्नों से चलती है।

अंततः, सवाल मनुष्य को आज़ाद करते हैंअंधविश्वास से, जड़ परंपराओं से, और स्वयं के अहंकार से। जो समाज सवाल पूछना सीख लेता है, वह गलतियों को सुधारने की क्षमता भी विकसित कर लेता है। प्रश्नों से डरना नहीं चाहिए; उनसे संवाद करना चाहिए, क्योंकि सवाल केवल रास्ता ही नहीं दिखाते, वे हमें चलना भी सिखाते हैं।❑

# समझना पैसों के मनोविज्ञान को

❑

**मॉर्गन हाउज़ल**

**पैसों के मनोविज्ञान की विशेषज्ञता रखने वाला कई किताबों का लेखक इस आलेख में वित्तीय प्रबंधन पर महत्वपूर्ण सीख दे रहा है। सं.**

❑

मुझे यह एहसास है कि पैसे के मनोविज्ञान की सॉफ्ट स्किल बहुत कम लोग समझ पाते हैं। वित्त को ज़्यादातर एक गणित आधारित विषय के तौर पर पढ़ाया जाता है, जहां आप डेटा को एक फॉर्मूले में डालते हैं और फॉर्मूला आपको बताता है कि क्या करना है, और यह मान लिया जाता है कि आपको वही करना है।

यह पर्सनल फाइनेंस में सच है, जहाँ आपको छह महीने का इमरजेंसी फंड रखने और अपनी सैलरी का 10 प्रतिशत बचाने के लिए कहा जाता है। यह निवेश में भी सच है, जहां हम ब्याज की दरें और मूल्यांकन के बीच सटीक हिस्टोरिकल कोरिलेशन जानते हैं। और यह कॉर्पोरेट फाइनेंस में भी सच है, जहाँ वित्तीय सलाहकार कैपिटल की सही लागत को माप सकते हैं।

ऐसा नहीं है कि इनमें से कोई भी चीज़ खराब या गलत है। क्या करना है यह समझाने वाली शिक्षा यह नहीं बताती कि जब आप उसे करने की कोशिश करते हैं तो आपके दिमाग में क्या होता है।

दो टॉपिक हर किसी पर असर डालते हैं, चाहे आपको उनमें दिलचस्पी हो या न हो, वे हैं सेहत और पैसा। हेल्थ केयर इंडस्ट्री मॉडर्न साइंस की एक बड़ी सफलता है, जिसकी वजह से पूरी दुनिया में लोगों की जीवन प्रत्याशा बढ़ रही है। वैज्ञानिक खोजों ने इंसानी शरीर के काम करने के तरीके के बारे में डॉक्टरों के पुराने विचारों को बदल दिया है, और इसकी वजह से लगभग हर कोई ज़्यादा स्वस्थ है।

किन्तु पैसे का उद्योगनिवेश, पर्सनल फाइनेंस, बिजनेस प्लानिंगएक अलग कहानी है।

पिछले दो दशकों में फाइनेंस ने टॉप यूनिवर्सिटीज़ से आने वाले सबसे होशियार दिमागों को अपनी तरफ खींचा है। क्या इसका कोई सबूत है कि इसने हमें विद्यार्थियों को बेहतर इन्वेस्टर बनाया है? मैंने ऐसा कोई सबूत नहीं देखा है।

सालों के सामूहिक ट्रायल और एरर से हमने सीखा है कि बेहतर किसान, कुशल प्लंबर और एडवांस्ड केमिस्ट कैसे बनें। लेकिन क्या ट्रायल और एरर ने हमें अपने पर्सनल फाइनेंस के साथ बेहतर बनना सिखाया है? क्या अब हमारे ऊपर कर्ज का बोझ कम होने की संभावना है? मुश्किल समय के लिए बचत करने की संभावना ज़्यादा है? रिटायरमेंट की तैयारी करने की? पैसे हमारी खुशी के लिए क्या करते हैं, और क्या नहीं करते, इसके बारे में रियलिस्टिक सोच रखने की? मैंने ऐसा कोई पक्का सबूत नहीं देखा है।

मुझे लगता है कि इसका मुख्य कारण यह है कि हम पैसे के बारे में इस तरह सोचते हैं और हमें इस तरह सिखाया जाता है जो बहुत ज़्यादा फिजिक्स (नियमों और कानूनों के साथ) जैसा होता है और साइकोलॉजी (भावनाओं और बारीकियों के साथ) जैसा कम होता है।

और यह, मेरे लिए, जितना दिलचस्प है उतना ही ज़रूरी भी है।

पैसा हर जगह है, यह हम सभी को प्रभावित करता है, और हममें से ज़्यादातर लोगों को कन्फ्यूज़ करता है। हर कोई इसके बारे में थोड़ा अलग तरह से सोचता है। यह उन चीज़ों के बारे में सबक देता है जो जीवन के कई क्षेत्रों पर लागू होती हैं, जैसे जोखिम, आत्मविश्वास और खुशी। कुछ ही ऐसे विषय हैं जो पैसे से ज़्यादा शक्तिशाली मैग्नीफाइंग ग्लास देते हैं जो यह समझाने में मदद करता है कि लोग ऐसा व्यवहार क्यों करते हैं। पैसा धरती पर सबसे शानदार चीज़ों में से एक है।

पैसे के मनोविज्ञान के बारे में मेरी अपनी समझ इस विषय पर एक दशक से ज़्यादा समय तक लिखने से बनी है। मैंने 2008 की शुरुआत में फाइनेंस के बारे में लिखना शुरू किया था। यह एक फाइनेंशियल संकट की शुरुआत थी और 80 सालों की सबसे बड़ी मंदी थी।

जो हो रहा था, उसके बारे में लिखने के लिए, मैं यह समझना चाहता था कि क्या हो रहा है। लेकिन वित्तीय संकट के बाद मैंने जो पहली बात सीखी, वह यह थी कि कोई भी सही-सही यह नहीं बता सकता था कि क्या हुआ, या क्यों हुआ। और तो और यह भी नहीं कि इसके बारे में क्या किया जाना चाहिए। हर अच्छी एक्सप्लेनेशन के लिए, उतनी ही भरोसेमंद काउंटर-आर्गुमेंट भी थे।

इंजीनियर पुल गिरने की वजह पता लगा सकते हैं क्योंकि इस बात पर सहमति है कि अगर किसी खास एरिया पर एक खास मात्रा में फोर्स लगाया जाता है, तो वह एरिया टूट जाएगा। फिजिक्स विवादित नहीं है। यह नियमों से चलती है। फाइनेंस अलग है। यह लोगों के व्यवहार से चलता है। और मेरा व्यवहार मुझे सही लग सकता है लेकिन आपको पागलपन लग सकता है।

जैसे-जैसे मैंने वित्तीय संकट के बारे में ज़्यादा पढ़ा और लिखा, मुझे एहसास हुआ कि हम इसे फाइनेंस के बजाय साइकोलॉजी और इतिहास के नज़रिए से बेहतर समझ सकते हैं।

लोग खुद को कर्ज़ में क्यों डुबो लेते हैं, यह समझने के लिए आपको ब्याज दरों का अध्ययन करने की ज़रूरत नहीं है; आपको लालच, असुरक्षा और आशावाद के इतिहास का अध्ययन करने की ज़रूरत है। निवेशक बेयर मार्केट के निचले स्तर पर क्यों बेचते हैं, यह समझने के लिए आपको भविष्य में मिलने वाले रिटर्न के गणित का अध्ययन करने की ज़रूरत नहीं है। आपको अपने परिवार को देखने और यह सोचने की पीड़ा के बारे में सोचना होता है कि क्या आपका निवेश उनके भविष्य को खतरे में डाल रहा है।

मुझे वोल्टेयर की यह उक्ति बहुत पसंद है कि इतिहास खुद को कभी नहीं दोहराता; इंसान हमेशा ऐसा करता

है। यह इस बात पर बहुत अच्छे से लागू होती है कि हम पैसे के साथ कैसा व्यवहार करते हैं।

अलग-अलग पीढ़ियों के लोग, अलग-अलग माता-पिता द्वारा पाले-पोसे गए लोग, दुनिया के अलग-अलग हिस्सों में, अलग-अलग इकोनॉमी में पैदा हुए लोग, अलग-अलग इंसेंटिव और अलग-अलग किस्मत के साथ अलग-अलग जॉब मार्केट का अनुभव वाली लोग जिन्होंने अलग-अलग पैसा कमाया और अलग-अलग मूल्य रखे, बहुत अलग-अलग सबक सीखते हैं।

दुनिया कैसे काम करती है, इस बारे में हर किसी का अपना अनोखा अनुभव होता है। और आपने जो अनुभव किया है, वह उस चीज़ से ज़्यादा असरदार होता है जो आप दूसरों से सीखते हैं।

इसलिए हम सभी – आप, मैं, हर कोई – पैसे कैसे काम करते हैं, इस बारे में विचारों के एक सेट से बंधे हुए जीवन जीते हैं जो हर व्यक्ति के लिए बहुत अलग होते हैं। जो आपको अजीब लगता है, वह मुझे समझ में आ सकता है।

जो व्यक्ति गरीबी में पला-बढ़ा है, वह रिस्क और रिवॉर्ड के बारे में इस तरह से सोचता है कि एक अमीर बैंकर का बच्चा कोशिश करने पर भी समझ नहीं सकता। जो व्यक्ति तब बड़ा हुआ जब महंगाई ज़्यादा थी, उसने कुछ ऐसा अनुभव किया जो उस व्यक्ति ने कभी नहीं किया जो स्थिर कीमतों के साथ बड़ा हुआ।

लोग पैसे के बारे में जो भी फैसला लेते हैं, उसे वे उस समय उनके पास मौजूद जानकारी के आधार पर सही ठहराते हैं और उसे दुनिया कैसे काम करती है, इसके अपने अनोखे मेंटल मॉडल में फिट करते हैं। वे लोग गलत जानकारी वाले हो सकते हैं। उनके पास अधूरी जानकारी हो सकती है। वे गणित में खराब हो सकते हैं। वे खराब मार्केटिंग से प्रभावित हो सकते हैं। उन्हें पता नहीं हो सकता कि वे क्या कर रहे हैं। वे अपने कामों के नतीजों का गलत अंदाज़ा लगा सकते हैं। हाँ, वे ऐसा कर सकते हैं। लेकिन एक इंसान जो भी फाइनेंशियल फैसला लेता है, वह उस पल में उसे सही लगता है और उन सभी बातों को पूरा करता है जिन्हें उसे पूरा करना होता है। उनकी कहानी उनके अपने अनोखे अनुभवों से बनी होती है।

एक आसान उदाहरण लीजिए: लॉटरी टिकट।

अमेरिकी लोग इन पर फिल्मों, वीडियो गेम्स, संगीत, खेल आयोजनों और किताबों को मिलाकर जितना खर्च करते हैं, उससे ज़्यादा खर्च करते हैं। और इन्हें कौन खरीदता है? ज़्यादातर गरीब लोग। अमेरिका में सबसे कम आय वाले परिवार औसतन हर साल लॉटरीटिकटों पर 412 डॉलर खर्च करते हैं, जो सबसे ज़्यादा इनकम वाले ग्रुप के लोगों से चार गुना ज़्यादा है। चालीस प्रतिशत अमेरिकी इमरजेंसी में 400 डॉलर का इंतज़ाम नहीं कर सकते। यानी: जो लोग 400 डॉलर के लॉटरी टिकट खरीदते हैं, वे ज़्यादातर वही लोग हैं जो कहते हैं कि वे इमरजेंसी में 400 डॉलर का इंतज़ाम नहीं कर सकते। वे अपनी सेविंग्स को ऐसी चीज़ पर बर्बाद कर रहे हैं जिसमें लाखों में से एक मौका होता है कि वे बड़ा इनाम जीतेंगे।

इस तरह पैसे का मनोविज्ञान समझना जरूरी है। ❑

# भावनाओं का रहस्यमय संसार

❑

❑

एंटोनियो दामासियो

**स्नायुतंत्र विज्ञानी इस आलेख में भावनाओं के एक ऐसे रहस्यमय संसार की बात कर रहे हैं जो मस्तिष्क के तंत्र में बनता है। सं.**

दर्द या खुशी, या इनके बीच की कोई चीज, हमारी दिमाग की बुनियाद होती हैं। हम अक्सर इस आसान सच्चाई पर ध्यान नहीं दे पाते क्योंकि हमारे आस-पास की चीज़ों और घटनाओं की मानसिक तस्वीरें तथा उन्हें बताने वाले शब्दों और वाक्यों की तस्वीरें, हमारे पहले से ही दूसरे कोलाहल के बोझ से दिमाग का ध्यान खींचे रहती हैं। हमारे मस्तिष्क में अनगिनत भावनाएं और उनसे जुडे हालात का शोर तभी बंद होता है जब हम सो जाते हैं। तब कई बार यह शोर तब एक ज़ोरदार गीत में बदल जाता है जब हम खुशी में डूबे होते हैं, या एक दुख भरी धुन होती है जब हम पर दुख हावी हो जाता है।

भावनाओं की सर्वव्यापकता को देखते हुए, कोई सोच सकता है कि विज्ञान ने बहुत पहले ही जान और समझ लिया होगा कि भावनाएं क्या हैं, वे कैसे काम करती हैं, और उनका क्या मतलब है? लेकिन ऐसा बिल्कुल नहीं है। जिन सभी मानसिक घटनाओं का हम वर्णन कर सकते हैं, उनमें भावनाएं और उनके ज़रूरी तत्व – दर्द और खुशी – जैविक और विशेष रूप से न्यूरोबायोलॉजिकल शब्दों में सबसे कम समझे गए हैं।

यह और भी ज़्यादा हैरान करने वाली बात लगती है जब हम देखते हैं कि उन्नत समाज भावनाओं को बेशर्मी से बढ़ावा देते हैं, और उन भावनाओं में हेरफेर करने के लिए इतने सारे संसाधन और प्रयास समर्पित करते हैं, जैसे शराब, नशीली दवाएं, मेडिकल दवाएं, भोजन, असली सेक्स, वर्चुअल सेक्स, हर तरह की अच्छा महसूस कराने वाली चीज़ों का सेवन, और हर तरह की अच्छा महसूस कराने वाली सामाजिक और धार्मिक प्रथाएं। हम गोलियों, पेय पदार्थों, हेल्थ स्पा, वर्कआउट और आध्यात्मिक अभ्यासों से अपनी भावनाओं का इलाज करते हैं, लेकिन न तो आम जनता और न ही विज्ञान अभी तक यह समझ पाया है कि जैविक रूप से भावनाएं क्या हैं।

मुझे इस स्थिति पर सच में कोई हैरानी नहीं है कि मैं भावनाओं के बारे में जो मानते हुए बड़ा हुआ, उसमें से ज़्यादातर सच नहीं था। उदाहरण के लिए, मुझे लगता था कि भावनाओं को खास तौर पर उस तरह परिभाषित करना असंभव है, जिस प्रकार आप देख, सुन या छू सकते सक्ने वाली चीजों को हम परिभाषित करते हैं। उन ठोस चीज़ों के

विपरीत, भावनाएं अमूर्त थीं। जब मैंने इस बारे में सोचना शुरू किया कि दिमाग मन को कैसे बनाता है, तो मैंने इस बात को मान लिया कि भावनाएं वैज्ञानिक दायरे से बाहर हैं। कोई इस बात का अध्ययन कर सकता है कि दिमाग हमें कैसे चलाता है। कोई संवेदी प्रक्रियाओं, देखने वाली और दूसरी प्रक्रियाओं का अध्ययन कर सकता है, और समझ सकता है कि विचार कैसे बनते हैं। कोई इस बात का अध्ययन कर सकता है कि दिमाग विचारों को कैसे सीखता है और याद रखता है। कोई उन भावनात्मक प्रतिक्रियाओं का भी अध्ययन कर सकता है जिनसे हम अलग-अलग चीज़ों और घटनाओं पर प्रतिक्रिया करते हैं। लेकिन भावनाएं हमेशा रहस्यमय बनी रहीं हैं। भावनाएं हमेशा रहस्यमय ही रहने वाली थीं। वे निजी और पहुंच से बाहर थीं। यह समझाना संभव नहीं था कि भावनाएं कैसे होती हैं या वे कहां होती हैं। कोई भी भावनाओं के पीछे नहीं जा सकता था।

जैसा कि चेतना के मामले में था, भावनाएं विज्ञान की सीमाओं से परे थीं, उन्हें न सिर्फ़ उन लोगों ने दरवाज़े से बाहर फेंक दिया जो इस बात से चिंतित थे कि कोई भी मानसिक चीज़ असल में न्यूरोसाइंस द्वारा समझाई जा सकती है, बल्कि खुद जाने-माने न्यूरोसाइंटिस्ट्स ने भी, जो कथित तौर पर पार न की जा सकने वाली सीमाओं का ऐलान कर रहे थे। इस विश्वास को सच मानने की मेरी अपनी इच्छा इस बात से साबित होती है कि मैंने कई साल भावनाओं को छोड़कर बाकी सब कुछ पढ़ने में बिताए। मुझे यह समझने में थोड़ा समय

लगा कि यह रोक कितनी गलत थी और यह महसूस करने में कि भावनाओं की, देखने या याददाश्त की न्यूरोबायोलॉजी से संभव नहीं थी। लेकिन आखिरकार मैंने ऐसा किया, क्योंकि मेरा सामना न्यूरोलॉजिकल मरीज़ों की सच्चाई से हुआ जिनके लक्षणों ने सचमुच मुझे उनकी स्थितियों की जांच करने के लिए मजबूर किया।

उदाहरण के लिए, कल्पना कीजिए कि आप किसी ऐसे व्यक्ति से मिलते हैं, जिसके दिमाग के किसी खास हिस्से में नुकसान होने की वजह से, वह तब दया या शर्म महसूस नहीं कर पाता जब उसे दया या शर्म महसूस करनी चाहिए थी। वह पहले की तरह ही खुश, दुखी या डरा हुआ महसूस कर सकता है, जैसा कि दिमाग की बीमारी शुरू होने से पहले था। क्या यह आपको सोचने पर मजबूर नहीं करेगा? या ऐसे व्यक्ति की कल्पना करें, जिसके दिमाग में कहीं और नुकसान होने की वजह से, वह डर महसूस नहीं कर पाता, जब उस स्थिति में डरना सही रिएक्शन होता, और फिर भी वह दया महसूस कर सकता है।

न्यूरोलॉजिकल बीमारी इसके पीड़ितों के लिए एक गहरी क्रूर खाई हो सकती है। मरीज़ और हममें से वे लोग जिन्हें यह सब देखना पड़ता है। लेकिन बीमारी का यह नश्तर ही इसकी एकमात्र अच्छी बात के लिए भी ज़िम्मेदार है। इंसान के दिमाग के सामान्य कामों को, अक्सर अजीब सटीकता के साथ अलग करके, न्यूरोलॉजिकल बीमारी इंसान के दिमाग और मन के मज़बूत किले में घुसने का एक अनोखा रास्ता देती है। ❑

# अविश्वसनीय पर सच मस्तिष्क के विलक्षण क्रियाकलाप

❑

❑

डॉ. श्रीगोपाल काबरा

**चिकित्सा विज्ञानी डॉ. काबरा जानकारी दे रहे हैं कि किस प्रकार कोई मानसिक बीमारी भी व्यक्ति को आध्यात्मिक और साहित्यिक ऊंचाइयों पर ले जा सकती है। सं.**

इनसे मिलिए। ये स्वयं न्यूरोलोजिस्ट है। न्यूयार्क में प्रेक्टिस। 60 साल की उम्र में मिरगी के दौरे आने लगे। दौरे गंभीर और दिखने में भयभीत करने वाले लेकिन उनको सुखद आश्चर्य कि वे जीवन में पहली बार कविता की और आकर्षित हुए। आकर्षण भी ऐसा कि उनका सोच, विचार सब गीत और कवितामय हो गया। हर वक्त छन्दबंद कविता में सोचना और लिखना। सोचना, भावविह्ल होना और लिखते रहना। अनेक किताबें लिख डाली, छपी और सराही गई। स्वयं को आत्म-संतोष, अपार आनन्द। जब दौरा पड़ता तकलीफ होती। चिकित्सकीय परीक्षण करवाये। मस्तिष्क के टेम्पोरल लोब, जो मिरगी के उद्वेलन का केन्द्र था, वहीं से उठती तीव्र तरंगे, भाव मस्तिष्क और मांसपेशी संचालक केन्द्रों पर पहुंचती तो एठन और झटकों से सारा शरीर जकड़ जाता और कुछ समय के लिए बेहोशी आ जाती। लेकिन दौरों के बीच लम्बा काल कवितामय, आनन्दमय। जीवन के संध्याकाल में उन्हें तो नया आनन्दकारी जीवन मिल गया।

टेम्पोरल लोब एपिलेप्सी (मिरगी) के विचित्र और विलक्षण लक्षण होते हैं। इन साहब को जब दौरा पड़ता है तो इनको तीव्र गंध महसूस होती है। ''सड़े हुए जानवर की बदबू आ रही है। सिर भन्ना रहा है। उल्टी आ रही है।'' आप पास खड़े हैं कही कोई बदबू नहीं है। हटात् उन्हें कहां से यह बदबू आने लगी। बदबू नहीं है लेकिन उनको महसूस हो रही है क्यों कि मिरगी का उद्वेलन केन्द्र घ्राण केन्द्र के पास है जिसके उत्तेजित होने से बदबू की स्मृति जाग उठती है और उन्हें सचमुच महसूस होती है। विश्वास नहीं होता पर उनके लिए यह सच है, उन्हें गन्ध सचमुच आ रही है, मितली आ रही है।

इन साहब को जब दौरा पड़ता है तो उन्हें आवाजें सुनाई देती है। कैसी आवज आ रही है, वे बोल कर बताते है। ''मां विलाप कर रही है।'' आपको वैसी कोई आवाज सुनाई नहीं देती। मां है ही नहीं। लेकिन उन्हें सुनाई दे रही है,

विचिलित कर रही है। कारण उनके मिरगी का उद्वेन केन्द्र मस्तिष्क के श्रवण केन्द्र के पास है।

और इनको जब दौरा पड़ता है तो दृश्य दिखाई पड़ते हैं। कभी देखा हुआ दृश्य मानस पटल पर साक्षात हो उठता है। गांव में खड़े है और बता रहे है कि कोलकता की ट्राम से उनका दोस्त उतर रहा है, जिसके हाथ में उनके लिए फूलों का गुलदस्ता है। कारण इनके टेम्पोरल लोब का उद्वेलन केन्द्र दृश्य केन्द्र के पास है।

टेम्पोरल लोब में स्थित हिप्पोकेम्पस और एमग्डेलॉइड के उद्वेलित होने पर तो और भी विलक्षण लक्षण उत्पन्न होते हैं। धार्मिक, आध्यात्मिक, वैचारिक और भावनात्मक उद्वेलन, और लेखन। व्यक्तित्व ही बदल जाता है। साधारण व्यक्ति संत, महापुरुष, लेखक और कवि के रूप में रूपान्तरित हो जाता है। आडम्बर या दिखावा नहीं, सही अर्थों में, अपनी पूरी विकसित क्षमता के साथ। कारण हिप्पोकेम्पस और एमेग्डेलॉइड, भाव मस्तिष्क लिम्बिक सिस्टम और वैचारिक मस्तिष्क, प्रिफ्रंटल कॉर्टेक्स से जुड़े होते हैं। उनके उद्वेलन से ऐसा होता है।

टेम्पोरल लोब में दृश्यात्मक, श्रवणात्मक और घ्राणात्मक स्मृतियों का संकलन और उन्हें स्मृति से वापस उजागर कर अनुभूत करने की प्रक्रिया हिप्पोकम्पस व एमाइग्डिला में होती है। भाषा-बोली, लिखने-पढने का ज्ञानार्जन यहीं होता है। संवेदनाओं के साथ भावनात्मक लगाव यहीं होता है। बौद्धिक विकास का आधार केन्द्र टेम्पोरल लोब ही है जहां से मिले संवेगों से फ्रंटल लोब में सोच, विचार, चिंतन, मनन, विवेक, अध्यात्म आदि उच्च स्तरीय मानसिक प्रक्रियायें होती हैं। मिरगी का उद्वेलन केन्द्र हिप्पोकेम्पस में होने पर बौद्धिक, वैचारिक, आध्यात्मिक उद्वेलन होता है; व्यक्ति आघ्यात्मलीन, धर्मपरायण, अति-धार्मिक हो जाता है। उत्कर्ष आध्यात्मिक विचार, दिव्यदर्शन, धर्माचरण, धर्मनिष्ट। लिखता है तो लिखता ही चला जाता है। परिस्कृत विचारों के अनुरूप उत्कर्ष लेखन, सतसंग प्रवीण। टेम्पोरल लोब से उत्पन्न मिरगी के इस मानसिक लक्षण समूह को गेसविन्ड सिन्ड्रोम के नाम से पहचाना जाता है।

इनसे मिलिए- ये साहब डॉक्टर से मिलने आये हैं। सलीके से पहने हुए कपड़े, गले में सोने की चैन से लटका काफी बडा हीरे जड़ा क्रॉस, चमकती आंखें, आत्मविश्वासी अंदाज, सामने कुर्सी में बैठे डाक्टर को बताते हैं कि दिव्य दर्शन के बाद कैसे उन्हे आध्यात्मिक ज्ञान हुआ और संसार का गूढ रहस्य समझ में आया। अब उन्हें सर्वत्र ईश्वर नजर आते हैं, उनकी कृपा, उनका आशीर्वाद प्राप्त है। जग आलोकित है, उनकी आत्मा की लौ दिव्य लौ में समा गई है, प्रकाश पुंज का हिस्सा बन गई है। दिव्य वाणी सतत सुनाई देती है। डाक्टर उनकी केस फाइल देखते है। उन्हें किशोर अवस्था से मीडियल टेम्पोरल लोब एपीलेप्सी के दौरे पड़ते हैं। आध्यात्मिक व धार्मिक उद्वेलन भी तभी से शुरू हुआ है। तो क्या उनका आध्यात्मिक ज्ञान, उनका धार्मिक उत्थान मिरगी के दौरे हैं? या उनके उत्कृष्ट आध्यात्मिक चिंतन के

वशीभूत कुछ लक्षण डाक्टरों को मिरगी के दौरे का भ्रम देते है? यह मिरगी के कारण ही यह इस बात से सिद्ध होता है कि जब जब भी उद्वेलन तेज होने पर टेम्पोरल लोब के बाहर पूरे मस्तिष्क में फैलता है वे संज्ञासून्य हो जाते हैं, हाथ पांव ऐंठते हैं और झटके लगते हैं।

टेम्पोरल लोब के सिंपल पार्शियल सीजर्स - आंशिक दौरे - साधारण आंशिक दौरे अपने प्रभाव में बड़े विलक्षण होते हैं। टेम्पोरल लोब में सामने की ओर घ्राण केन्द्र, बाहर की ओर श्रवण केन्द्र और पीछे की ओर दृष्टि केन्द्र स्थित होते हैं, अतः मिरगी उद्वेवलन का केन्द्र (फोकस) इनमें से जिस संवेदन केन्द्र में होगा लक्षण उसी संवेदन के होंगे। घ्राण केन्द्र में होने पर व्यक्ति को बदबू या खुशबू महसूस होगी; यह मात्र आभास होगा यथार्थ नहीं - भ्रमाक आभास, विभ्रम, हेल्यूसिनेशन। श्रवण केन्द्र स्थित उद्वेलन से आवाज और बोलियां सुनाई देंगी और दृष्टि संवेगों के उद्वेलन पर दृश्य दिखेगे। ये दृश्य संचित स्मृति के पुराने दृश्य होते हैं लेकिन व्यक्ति को महसूस होता है जैसे वह उसे वर्तमान में देख रहा है, मन की आंख से। आपके लिए भ्रम लेकिन रोगी के लिए अनुभूत सच। ❑

# भारतीय शोधकर्ताओं ने खोजी नई आकाशगंगा

भारतीय खगोलविदों ने एक नई 'सर्पिल' आकाशगंगा की खोज की है, जो ब्रह्मांड के शुरुआती काल से अस्तित्व में रही है। इस नई खोज ने आकाशगंगाओं के विकसित होने के बारे में मौजूदा समझ को बदल दिया है।

यह शोध नासा के जेम्स वेब स्पेस टेलीस्कोप का उपयोग करके किया गया था और इसका नेतृत्व पीएचडी छात्रा राशि जैन ने किया।

इस शोध का मार्गदर्शन पुणे स्थित टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ़ फ़ंडामेंटल रिसर्च के राष्ट्रीय रेडियो खगोल भौतिकी केंद्र के प्रो. योगेश वाडदेकर ने किया था। यह शोध प्रमुख यूरोपीय खगोल विज्ञान पत्रिका 'एस्ट्रोनॉमी एंड एस्ट्रोफिजिक्स' में छपा है।

आकाशगंगाएं तारों, ग्रहों, गैस और धूल से बनी विशाल प्रणालियां हैं जो गुरुत्वाकर्षण से एक साथ जुड़ी रहती हैं। इनकी संख्या कुछ हज़ार तारों से लेकर खरबों तक होती है, और ये सर्पिल, अण्डाकार या अनियमित आकार में पाई जाती हैं।

शोधकर्ताओं ने इस नई खोजी आकाशगंगा के लिए हिमालयी नदी अलकनंदा का नाम चुना जो गंगा की दो मुख्य धाराओं में से एक है।

यह एक सर्पिल आकाशगंगा है जो 12 अरब प्रकाश वर्ष दूर स्थित है। इसका अर्थ है कि आकाशगंगा की रोशनी हम तक पहुँचने के लिए 12 अरब वर्षों से भी अधिक समय तक यात्रा करती है।

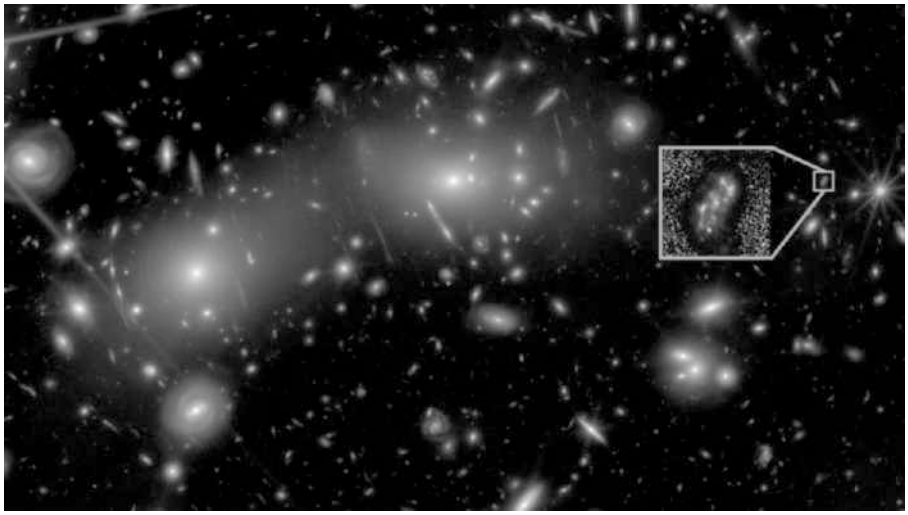

राशि जैन कहती हैं, हम इस आकाशगंगा को उसी रूप में देख रहे हैं जैसी यह बिग बैंग के ठीक 1.5 अरब वर्ष बाद दिखाई दी थी। इस प्रारंभिक युग में इतनी सुगठित सर्पिल आकाशगंगा का मिलना अप्रत्याशित है। यह हमें बताता है कि हमारे ब्रह्मांड में जटिल संरचनाएं हमारे अनुमान से कहीं पहले ही निर्मित हो रही थीं।

टीम ने पाया कि जैसे अलकनंदा कोई आकाशगंगा न होकर एक प्रभावशाली ब्रह्मांडीय शक्ति केंद्र है। इस आकाशगंगा में हमारे सूर्य से लगभग 10 अरब गुना द्रव्यमान है। अलकनंदा हर साल नए तारों का निर्माण कर रही है, जो हमारी आकाशगंगा की वर्तमान तारा निर्माण दर से लगभग 20 से 30 गुना तेज़ है। इसे आकर्षक बनाने वाली बात इसकी सर्पिल संरचना है। यह आकाशगंगा दो भुजाओं की तरह एक चमकीले उभार के चारों ओर लपेटे हुए दिखती है।

यह पृथ्वी से बहुत दूर है, लेकिन गुरुत्वाकर्षण इसकी रोशनी को बड़ा कर देता है, जिससे खगोलविदों को इसे और स्पष्ट रूप से देखने में मदद मिलती है।

राशि जैन ने बताया कि, हमारी आकाशगंगा का हिंदी नाम मंदाकिनी

है। इसलिए हमने इस आकाशगंगा के लिए 'अलकनंदा' नाम चुना।

जेम्स वेब स्पेस टेलीस्कोप के निर्माण से पहले, खगोलविदों का मानना था कि प्रारंभिक ब्रह्मांड में आकाशगंगाएं अव्यवस्थित और गुच्छेदार होती थी, जिनमें स्थिर सर्पिल संरचनाएं तभी उभरीं जब ब्रह्मांड कई अरब वर्ष पुराना हो गया। प्रमुख सिद्धांत यह था कि प्रारंभिक आकाशगंगाएँ गर्म और अशांत थीं। इन्हें ठंडा होने और सर्पिल पैटर्न बनाए रखने में समय लगता था।

वाडदेकर कहते हैं, अलकनंदा एक अलग ही कहानी कहती है। इस आकाशगंगा को 10 अरब सौर द्रव्यमान के तारों को इकट्ठा करना पड़ा और साथ ही सर्पिल भुजाओं वाली एक बड़ी डिस्क का निर्माण करना पड़ा। ब्रह्मांडीय मानकों के हिसाब से यह सब अविश्वसनीय रूप से तेज़ है।

ज्यादातर आकाशगंगाएं 10 से 13.6 अरब वर्ष पुरानी हैं, जो लगभग ब्रह्मांड की आयु जितनी ही पुरानी हैं। इस विशाल ब्रह्मांडीय समयरेखा के बीच, अलकनंदा की खोज कई मायनों में ख़ास है।

अब शोधकर्ता दो प्रमुख संभावनाओं की जाँच कर रहे हैं। एक संभावना यह है कि आकाशगंगाओं की डिस्क से होकर गुज़रने वाली घनत्व तरंगों ने सर्पिल पैटर्न का निर्माण और रख-रखाव किया होगा। यह प्रक्रिया आमतौर पर शांत, ठंडी डिस्क में देखी जाती है, जो सुचारू गैस संचयन के माध्यम से धीरे-धीरे बढ़ती है। दूसरा सिद्धांत आस-पास की छोटी आकाशगंगाओं में होने वाली उथल-पुथल की ओर इशारा करता है, जो सर्पिल संरचनाओं को जन्म दे सकते हैं। हालांकि, ऐसी भुजाएं आमतौर पर थोड़े समय के लिए ही निर्मित होती हैं। एक और बात अलकनंदा के निर्माण को उलझाती है। मिले साक्ष्यों के अनुसार, इसका विकास शायद सहज तरीके से हुआ है, न कि हिंसक विलयों के ज़रिए। असली चुनौती यह समझना है कि अलकनंदा ने कैसे लगभग 60 करोड़ वर्षों में अपने तारे बनाए। इस काम के लिए आमतौर पर लगभग एक अरब वर्ष लगते हैं। यह विसंगति खगोलविदों को आकाशगंगाओं में सर्पिल भुजाओं के निर्माण के बारे में लंबे समय से चले आ रहे सिद्धांतों पर दोबारा विचार करने के लिए प्रेरित कर रही है।

अलकनंदा के गुणों का विश्लेषण करने के लिए, टीम ने स्पेक्ट्रल एनर्जी डिस्ट्रीब्यूशन (एसईडी) मॉडलिंग का उपयोग किया। उनके निष्कर्ष बताते हैं कि इस आकाशगंगा में मध्यम मात्रा में धूल है और इसकी आयु केवल 19.9 करोड़ वर्ष है। इसके बनने के व्यक्त ब्रह्मांड स्वयं महज़ लगभग 1.5 अरब वर्ष पुराना था।

वैज्ञानिकों का कहना है कि

अलकनंदा की दूरी (रेडशिफ्ट) का मापन तो ठीक से हो चुका है, लेकिन इसकी आंतरिक संरचना की अभी भी गहन जाँच की जानी है।

शोधकर्ता राशि जैन और योगेश वाडदेकर बताते हैं कि भविष्य में जेम्स वेब स्पेस टेलीस्कोप और अटाकामा लार्ज मिलीमीटर एरे (एएलएमए) जैसे उपकरण इस युवा आकाशगंगा के व्यवहार को समझने में मदद करेंगे। ये उपकरण आकाशगंगा की डिस्क की गति को माप सकते हैं। साथ ही यह भी समझ सकते हैं कि क्या सर्पिल भुजाओं को बनाने के लिए डिस्क ठंडी और शांत होनी चाहिए या गर्म और तेज़ी से घूमती हुई।

वाडदेकर कहते हैं, अलकनंदा की डिस्क ठंडी है या गर्म, यह जानने से हमें पता चलेगा कि इसकी सर्पिल भुजाएँ कैसे बनीं। इससे यह भी पता चलेगा कि क्या शुरुआती ब्रह्मांड में इस तरह की आकाशगंगाओं ने कोई अलग रास्ता अपनाया था।

अलकनंदा और अन्य प्रारंभिक सर्पिल आकाशगंगाओं की खोज से पता चलता है कि आकाशगंगाओं के परिपक्व होने की हमारी मौजूदा समझ को अपडेट करने की ज़रूरत है। ❑

**–प्रो. प्रकाश नारायण कल्ला**

# विनम्रता और शालीनता !

❑

❑

निरुपमा राव

**विदेश सचिव रही विदेश सेवा की अधिकारी भारतीय सभ्यता में संयम का महत्व रेखांकित करते हुए इसके वर्तमान क्षरण को इस आलेख में सांस्कृतिक चिंता का विषय बता रही है। सं.**

भारत में, मैंने देखा है कि आज विनम्रता और शालीनता को अक्सर नज़रअंदाज़ कर दिया जाता है। जो लोग विनम्र और शांत स्वभाव के होते हैं, उन्हें अक्सर हल्के-फुल्के तरीके से साधारण मान लिया जाता है। कोमलता को कम आंका जाता है और उसका महत्व कम समझा जाता है।

सदियों से, उपमहाद्वीप में ताकत दिखाई देने वाली शक्ति थी। राजा, साम्राज्य, ज़मींदार, औपनिवेशिक शासक। सत्ता खुद को ज़ोर-शोर से दिखाती थी क्योंकि चुप्पी का मतलब कमज़ोरी था। जब ज़िंदा रहने के लिए नज़रअंदाज़ न होना या कुचला न जाना ज़रूरी हो, तो संयम गुण नहीं लगता, बल्कि जोखिम लगने लगता है। एक शांत व्यक्ति को कमज़ोर माना जाता है। एक ज़ोर से बोलने वाला व्यक्ति सुरक्षा, संख्या और ताकत का संकेत देता है।

आज़ादी के बाद भी, नैतिक अधिकार तब तक अधूरा लगता था जब तक उसे ज़बरदस्ती की क्षमता का साथ न मिले। गांधीवादी विनम्रता एक प्रतीक के रूप में तो बची रही, लेकिन एक ऑपरेटिंग सिस्टम के रूप में नहीं। इसमें जाति और वर्ग का भी पहलू है। जब सामाजिक गतिशीलता कमज़ोर होती है, तो लोग सीढ़ी से नीचे धकेले जाने से बचने के लिए ताकत दिखाते हैं। आक्रामकता कवच बन जाती है।

आधुनिक मीडिया इसे और खराब करता है। टेलीविज़न बहसें आवाज़ को इनाम देती हैं, सोच को नहीं। राजनीति प्रभुत्व को इनाम देती है, मनाने को नहीं। सोशल मीडिया आत्मविश्वास को क्रूरता से मिला देता है। एल्गोरिदम को गरमा-गरमी पसंद है। शांति ट्रेंड नहीं करती। संयम वायरल नहीं होता। इसलिए ताकत सिर्फ़ एक हाव-भाव नहीं, बल्कि एक भाषा बन जाती है।

लेकिन यहां एक शांत विरोधाभास है। भारतीय सभ्यता ने अपने सबसे आत्मविश्वासी दौर में ठीक इसके विपरीत को महत्व दिया। शास्त्रीय ग्रंथ विजय के बजाय आत्म-नियंत्रण की प्रशंसा करते हैं। सबसे ऊंचा आदर्श वह व्यक्ति नहीं था जो दूसरों को कुचल सके, बल्कि वह था जो खुद पर शासन कर सके। विनम्रता अंदर की ओर मुड़ी हुई ताकत थी। शालीनता अनुशासन था, कमज़ोरी नहीं।

हम अभी जो देख रहे हैं वह सांस्कृतिक चिंता है। जब समाज अपनी जगह को लेकर अनिश्चित महसूस करते हैं, तो वे ज़रूरत से ज़्यादा सख़्ती दिखाते हैं।

इतिहास के शांत दौर में, भारत ने संयम का सम्मान किया। अशांत दौर में, यह ताकत को सलाम करता है। यह आपको गुणों के बारे में कम और उस पल की असुरक्षाओं के बारे में ज़्यादा बताता है। ऐसे समय में विनम्रता और शालीनता खत्म नहीं होतीं। वे पीछे हट जाती हैं। और इतिहास आखिरकार उनके पास वापस लौटेगा।❑

# एआई का गुब्बारा जल्दी फूटने वाला नहीं

❑

❑

प्रोफेसर बी रविंद्रन

**आईआईटी मद्रास के वाधवानी स्कूल ऑफ डेटा साइंस एंड आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस के डेटा साइंस और आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस डिपार्टमेंट, रॉबर्ट बॉश सेंटर फॉर डेटा साइंस एंड आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस और सेंटर फॉर रिस्पॉन्सिबल एआई के प्रमुख कह रहे हैं कि एआई का गुब्बारा जल्दी फूटने वाला नहीं है। सं.**

एआई इंसानों के साथ इमोशनली कनेक्ट हो रही हैं। यही बात मुझे परेशान कर रही है। हम अपने इमोशंस का उनमें निवेश कर रहे हैं। हम एक तरह से खुद को दूसरी तरफ देख रहे हैं। हम किसी तरह एआई के शब्दों को बनाने वाले एल्गोरिदम में सहानुभूति पढ़ पा रहे हैं। एआई मॉडल के साथ यह इमोशनल जुड़ाव बहुत डरावना है।

सवाल यह है कि क्या इंसान हर समस्या को हल करने में माहिर होते हैं? समस्याएं हल करने में बेहतर बनने से पहले आपको बहुत सारे अनुभव, प्रैक्टिस, टीचिंग, ट्रेनिंग वगैरह की ज़रूरत होती है। हम एआई में जो बनाना चाहते हैं, वह ऐसा नहीं है जो हर चीज़ में अच्छा हो, बल्कि एआई की अलग-अलग कॉपीज़ जो अलग-अलग चीज़ों में अच्छी हों। उदाहरण के लिए, एक मॉडल गणित बहुत अच्छे से कर सकता है, लेकिन राजनीति में अच्छा नहीं। यह इंसानों जैसा ही है। कुछ इंसान आर्टिस्टिक हो सकते हैं, जबकि कुछ दूसरे स्पोर्ट्स में अच्छे हो सकते हैं। कुछ लोग गणित में अच्छे होते हैं। कुछ लोग राजनीति में अच्छे होते हैं। इसी तरह, आपको अलग-अलग चीज़ों में अच्छे एआई मॉडल की वैरायटी चाहिए, न कि ऐसा जो हर चीज़ में अच्छा हो।

एआई सिस्टम पहले से ही इंसानों से ज़्यादा पावरफुल हैं। उदाहरण के लिए, कोई भी इंसान शतरंज में एआई को नहीं हरा सकता। एआई ने 1990 के दशक में गैरी कास्पारोव को हरा दिया था! पिछले 30 सालों से, कोई भी इंसान शतरंज में सबसे अच्छे एआई को नहीं हरा पाया है।

कोई भी इंसान उतना ज्ञान पचा नहीं सकता जितना एआई आज पचा सकता है। ऐसे बहुत सारे काम हैं, जैसे इमेज पहचानना। तो, क्या एआई इंसानों से बेहतर हो सकता है? हां। एआई इंसानों से बेहतर है, लेकिन यह सुधार बहुत असमान है।

टेक्नोलॉजी पर अभी भी हमारा कंट्रोल है। हम यह भी तय कर सकते हैं कि हम एआई को कंट्रोल देना चाहते हैं या नहीं। क्या आप किसी ऑटोमेटेड सॉफ्टवेयर सिस्टम-ज़रूरी नहीं कि एआई हो-को न्यूक्लियर बटन दबाने का फैसला करने की पावर देंगे? नहीं।

जब भी मैं किसी ऑटोमेटेड सिस्टम को फैसला लेने की पूरी पावर देता हूँ, तो कुछ बहुत बुरा होने का खतरा रहता है। एआई के साथ भी ऐसा ही हो सकता है, और एआई के साथ ऐसा होने की संभावना ज़्यादा है। मुझे नहीं लगता कि हमें कभी भी अपनी आज़ादी छोड़नी चाहिए जहां खतरा ज़्यादा हो।

एआई हमारी मदद करने वाला है। इसमें कोई शक नहीं है। एआई एक शानदार टेक्नोलॉजी है। और यह कोई एक टेक्नोलॉजी नहीं है। एक टेक्नोलॉजी के तौर पर एआई में बहुत सी अलग-अलग चीजें हैं, और इस टेक्नोलॉजी ने पहले ही हमारी ज़िंदगी को काफी बदल दिया है। हल्के-फुल्के अंदाज़ में कहूँ तो, आजकल मुझे इंटर्नशिप के लिए स्टूडेंट्स से जो ईमेल मिलते हैं, उनकी क्वालिटी में काफी सुधार हुआ है क्योंकि वे एआई की मदद ले रहे हैं! मैं यह नहीं कह रहा कि यह बुरा है। अगर आपके पास कोई टूल है, तो आप उसका इस्तेमाल करेंगे ही। यह फाउंटेन पेन से लिखने से लेकर कीबोर्ड पर टाइप करने जैसा है।

आपको पता है, यह टेक्नोलॉजी 1950 के दशक से है। 1950 के दशक में, लोग अखबारों में एआई के बारे में कहानियां लिखते थे कि वह इंसानों की तरफ से दूसरी दुनिया को एक्सप्लोर करेगा। उन्होंने कहा था कि एआई दूसरे ग्रहों पर जाएगा, इंसान नहीं। यह साइंस फिक्शन नहीं था। ये ऐसे आर्टिकल थे जो अखबारों में छपे थे। तो, यह हाइप कुछ दशकों से चल रहा है। लेकिन भविष्य इस बात पर निर्भर करेगा कि हम अपनी ज़िंदगी को बेहतर बनाने के लिए एआई का कितना असरदार तरीके से इस्तेमाल करते हैं। इसका बहुत पॉजिटिव असर होगा।

एआई कहीं जाने वाला नहीं है। किसी भी टेक्नोलॉजी की तरह, इसके कुछ नेगेटिव असर भी होंगे। लोग इस मुद्दे के सिर्फ़ एक पहलू के बारे में बात कर रहे हैं। हाँ, नौकरियाँ जा रही हैं। लेकिन नई नौकरियाँ भी बन रही हैं। एआई ऐसे नए मौके बनाएगा जिनकी आप अभी कल्पना भी नहीं कर सकते। एआई लोगों के हाथों में पावर देगा, और वे नई नौकरियाँ बनाना शुरू करेंगे। जब भी इस तरह की कोई मददगार टेक्नोलॉजी आती है, तो जॉब डिस्प्लेसमेंट होता है, यानी नौकरियाँ एक सेक्टर से दूसरे सेक्टर में चली जाती हैं। नौकरी का नुकसान भी इसका एक हिस्सा है। मुझे उन लोगों की चिंता है जो चालीस की उम्र के हैं, क्योंकि उन्हें सच में खुद को फिर से ट्रेन करना होगा। वे अपने करियर में एक्सपर्टीज़ के उस लेवल पर नहीं हैं कि वे कह सकें कि हम बहुत ज़रूरी हैं और हमारी जगह कोई नहीं ले सकता। लेकिन जो लोग सबसे ऊपर हैं, वे वहीं रहेंगे। मुझे उन लोगों की चिंता नहीं है जो इस उम्र में बड़े हो रहे हैं, क्योंकि वे ही नई इकॉनमी को लीड करेंगे। ज़ाहिर है, नौकरियों में बदलाव तो होगा ही।

प्रोग्रामिंग की नौकरी खत्म नहीं होने वाली है। लेकिन टीसीएस हर साल दो बस भर बच्चों को नौकरी पर रखेगा, ऐसा नहीं होगा। कॉलेज में जिस तरह की एक्सपर्टीज़ सिखाई जाएगी, वह भी बदल जाएगी। यह ज़्यादातर प्रोग्राम्स को स्ट्रक्चर करने और आप किसी प्रोजेक्ट को कैसे लीड करते हैं, इस बारे में होगा। ये बहुत कम लोग होंगे, शायद कुछ लाख।

कंप्यूटर साइंस में ग्रेजुएट होने वाले 4 लाख से 5 लाख लोगों को सॉफ्टवेयर कंपनियों में नौकरी नहीं मिलेगी। साथ ही, सॉफ्टवेयर कंपनी शुरू करने का बार नीचे आ जाएगा। एआई के साथ इस तरह की सर्विस देने के लिए आपको टीसीएस या कॉगनीजन्ट जितनी बड़ी कंपनी की ज़रूरत नहीं होगी। आपको ज़्यादा छोटी कंपनियां खास कोडिंग सर्विस देते हुए दिखेंगी।

तो क्या हम लोगों को ज़्यादा एंटरप्रेन्योर बनते हुए देख रहे हैं? हाँ, वे असल में बहुत छोटे लेवल पर प्रोडक्ट बना सकते हैं। उन्हें उस तरह के इन्वेस्टमेंट की ज़रूरत नहीं होगी जो आप आज देखते हैं। लेकिन आप पूरी तरह से अंदाज़ा नहीं लगा सकते कि नया इकोसिस्टम कैसा बनेगा।

शिक्षक के रूप में मेरी नौकरी आज सबसे ज़्यादा खतरे में है! बच्चों को अब टीचर की ज़रूरत नहीं पड़ेगी। वे ऑनलाइन जाकर किसी भी सब्जेक्ट पर एआई मॉडल से पूछ सकते हैं। कुल मिलाकर टीचिंग का तरीका बहुत ज़्यादा बदलने वाला है।

क्या एआई का गुब्बारा – बबल – फूटेगा जैसे सवाल का जवाब है कि लोग बबल के बारे में बात करते हैं, मैं उन्हें बताता हूँ कि एआई कई 'सर्दियों' से गुज़र चुका है। वे इसे एआई विंटर्स कहते हैं। जैसे 1950 के आखिर और 1960 की शुरुआत में, एआई का बबल 'फूट गया'। और अगले 10 सालों तक, किसी ने भी एआई में इन्वेस्ट नहीं किया। एआई में काम करने के लिए वे बुरे दिन थे क्योंकि बहुत कम पैसा था। फिर से, 1980 के दशक के बीच में, एआई ने तेज़ी पकड़ी। लेकिन 1990 के दशक तक, एआई का बबल फूट गया। यह हर 10 साल में होता रहा है। मेरा अंदाज़ा है कि अब हमारे पास वैसा एआई बबल नहीं फूटेगा। हमारे पास एक और एआई विंटर नहीं आएगा। लेकिन मुझे एआई ऑटम से कोई दिक्कत नहीं होगी! मुझे अभी एआई विंटर नहीं दिख रहा है। ❑

# स्वास्थ्य में निवेश बिना जीडीपी का उछाल माने नहीं रखेगा!

❑

❑

रमणन लक्ष्मीनारायण

**वन हेल्थ ट्रस्ट के अध्यक्ष रमणन बता रहे हैं कि विकसित भारत का सपना स्वास्थ्य और पर्यावरण की गुणवत्ता बिना साकार नहीं हो सकेगा। सं.**

विकसित भारत 2047 का विज़न है कि भारत 30-ट्रिलियन डॉलर की इकोनॉमी बने, जिसकी प्रति व्यक्ति आय 18,000–21,000 डॉलर हो, जिसका मतलब है विकसित देश का दर्जा। इसे हासिल करने के लिए स्ट्रक्चरल बदलाव, ज़्यादा प्रोडक्टिविटी, और मानव पूंजी, इंफ्रास्ट्रक्चर, और इनोवेशन में बड़े निवेश के ज़रिए हर साल लगभग दस प्रतिशत की लगातार नॉमिनल सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) वृद्धि की ज़रूरत होगी। इस बात को एक तरफ रख दें कि भारत ने एक बार में एक साल से ज़्यादा समय तक इतनी ऊंची विकास दर कभी हासिल नहीं की है। तब क्या 21,000 डॉलर प्रति व्यक्ति जीडीपी के साथ भी भारत विकसित देश माना जाएगा?

एक विकसित देश वह होता है जिसकी संपत्ति मुख्य रूप से प्राकृतिक संसाधनों के बजाय मानव पूंजी पर निर्भर करती है। इसके लोग शिक्षित, स्वस्थ और प्रोडक्टिव होते हैं, जो इनोवेशन और लगातार आर्थिक विकास की नींव बनाते हैं। ऐसे देशों में विचारों, रिसर्च और सेवाओं पर आधारित विविध अर्थव्यवस्थाएं होती हैं, जिन्हें मज़बूत संस्थानों और स्वास्थ्य देखभाल, शिक्षा और अवसरों तक समान पहुंच का समर्थन प्राप्त होता है। शासन स्थिर होता है, और समृद्धि व्यापक रूप से साझा की जाती है, जिससे रचनात्मकता और प्रोडक्टिविटी एक-दूसरे को मज़बूत करते हैं। संक्षेप में, विकास का मतलब ज़मीन से मूल्य निकालने से हटकर मानव क्षमता से मूल्य पैदा करना है - प्राकृतिक धन को स्थायी मानव क्षमता में बदलना।

स्वास्थ्य में समानांतर निवेश के बिना आर्थिक विकास संभव है, लेकिन यह लगभग हमेशा अस्थायी और असमान होता है। कई देशों खासकर संसाधन-समृद्ध या व्यापार-संचालित अर्थव्यवस्थाओं ने सार्वजनिक स्वास्थ्य प्रणालियों के कम वित्तपोषित रहने के बावजूद प्रति व्यक्ति जीडीपी में वृद्धि हासिल की है। ऐसे मामलों में, विकास व्यापक मानव-पूंजी विकास के बजाय तेल, खनन, या प्रेषण जैसे क्षेत्रों द्वारा संचालित होता है। बेहतर स्वच्छता, शिक्षा, या पोषण के माध्यम से शुरुआती जीवन रक्षा में सुधार हो सकता है, जिससे बड़े स्वास्थ्य खर्च के बिना स्वास्थ्य प्रगति का भ्रम पैदा होता है। फिर भी, एक बार जब संक्रामक रोग कम हो जाते हैं और आबादी बूढ़ी हो

जाती है, तो इस मॉडल की सीमाएं स्पष्ट हो जाती हैं। पुरानी बीमारियां, शहरी प्रदूषण, और देखभाल तक असमान पहुंच प्रोडक्टिविटी और सामाजिक स्थिरता दोनों को कम करने लगती है। मध्य एशिया, उप-सहारा अफ्रीका और लैटिन अमेरिका के कुछ हिस्सों के अनुभवजन्य अध्ययन दिखाते हैं कि देश वर्षों तक विकास कर सकते हैं जबकि स्वास्थ्य संकेतक स्थिर रहते हैं। लेकिन आय और भलाई का अलग होना उल्टा हो जाता है: खराब स्वास्थ्य आखिरकार श्रम उत्पादकता को सीमित करता है, निर्भरता अनुपात बढ़ाता है, और स्वास्थ्य देखभाल लागत बढ़ाता है, जिससे लंबे समय तक विकास धीमा हो जाता है। जो देश मातृ स्वास्थ्य, निवारक देखभाल और बीमारी की निगरानी में निवेश करने में विफल रहते हैं, वे अक्सर पाते हैं कि उनके शुरुआती आर्थिक लाभ बढ़ते गैर-संचारी रोगों के बोझ और बढ़ती असमानता से खत्म हो जाते हैं।

ऐतिहासिक रूप से, सतत विकास न केवल उच्च आय पर, बल्कि सायास किए गए सामाजिक निवेश – सार्वजनिक स्वास्थ्य, शिक्षा और पर्यावरण संरक्षण – पर निर्भर रहा है। जहां ऐसे निवेश की उपेक्षा की जाती है, वहां विकास कमजोर नींव पर टिका रहता है। इसके विपरीत, जिन देशों ने स्वास्थ्य को विकास में समाहित किया – जैसे दक्षिण कोरिया, श्रीलंका या कोस्टा रिका – उन्होंने आर्थिक लाभ को लंबी उम्र, कार्यबल लचीलापन और सामाजिक सामंजस्य में बदल दिया। सबक स्पष्ट है: आर्थिक विकास स्वास्थ्य निवेश के बिना हो सकता है, लेकिन केवल कुछ समय के लिए। समय के साथ, आबादी के स्वास्थ्य की उपेक्षा विकास को प्रगति के इंजन से कमजोरी के स्रोत में बदल देती है, जिससे वही असमानताएं बढ़ जाती हैं जिन्हें दूर करने के लिए विकास किया था।

जन्म के समय जीवन प्रत्याशा स्वास्थ्य का एक माप है – अपूर्ण फिर भी स्थिर। भारत के जीवन प्रत्याशा लक्ष्य महत्वाकांक्षी हैं लेकिन वर्तमान रुझानों में असमान रूप से आधारित हैं। हालांकि विकसित भारत विजन दस्तावेजों के तहत कोई स्पष्ट राष्ट्रीय लक्ष्य नहीं है, कई राज्यों ने ठोस लक्ष्य बताए हैं। गुजरात का लक्ष्य 84 साल की औसत जीवन प्रत्याशा है और मृत्यु दर बहुत कम है; आंध्र प्रदेश का लक्ष्य 85 साल है और 2029 तक मातृ मृत्यु दर 25 से कम करना है; उत्तर प्रदेश अपने स्वास्थ्य एजेंडे के हिस्से के रूप में बीमा कवरेज के मील के पत्थर पर नज़र रखता है, लेकिन जीवन प्रत्याशा पर मात्रात्मक लक्ष्यों के बिना।

राष्ट्रीय स्तर पर, जीवन प्रत्याशा सालाना लगभग 0.4 साल बढ़ रही है। सबसे आशावादी परिदृश्य में, 2047 तक 81 साल का स्तर यथार्थवादी है, लेकिन इसके लिए प्रगति की वर्तमान दर को जारी रखने की आवश्यकता है।

भारत में 2005 और 2015 के बीच, जीवन प्रत्याशा चार से पांच साल बढ़ी, जो मातृ और बाल स्वास्थ्य, टीकाकरण, और संक्रमण नियंत्रण में निवेश के कारण हुई। मगर 2015 से यह गति धीमी होकर प्रति दशक लगभग तीन साल हो गई है।

इस तरह की मंदी आम है जब देश जनसांख्यिकीय संक्रमण से गुजरते हैं: मृत्यु दर संक्रामक से पुरानी बीमारियों में बदल जाती है, और लाभ हासिल करना कठिन हो जाता है। मेक्सिको एक चेतावनी भरा समानांतर उदाहरण प्रदान करता है – इसकी जीवन प्रत्याशा लगभग 75 साल पर स्थिर हो गई है, जो प्रति दशक मुश्किल से 0.9 साल बढ़ी है। जब तक भारत स्वास्थ्य निवेश और बड़े पैमाने पर रोकथाम को बनाए नहीं रखता, तब तक उसे शुरुआती सफलता के बाद स्थिरता के उसी रास्ते पर चलने का जोखिम है।

हाल के वर्षों में, भारत सार्वजनिक स्वास्थ्य में मजबूत केंद्रीय निवेश से पीछे हट गया है, जिससे राज्यों पर बोझ आ गया है। यह दृष्टिकोण अस्थिर है। उद्योगों को आकर्षित करने की होड़ में, राज्य निचले स्तर की प्रतिस्पर्धा का जोखिम उठाते हैं ˙ पर्यावरण मानकों को कम करते हैं और सभी के लिए जीवन की गुणवत्ता को खराब करते हैं। इसके परिणाम पहले से ही दिल्ली और मुंबई की खराब हवा की गुणवत्ता में दिखाई दे रहे हैं, जहाँ राज्य नियंत्रण की सीमाएँ दर्दनाक रूप से स्पष्ट हैं।

स्वास्थ्य और पर्यावरण की गुणवत्ता समृद्धि के पुरस्कार नहीं हैं; वे इसकी नींव हैं। भारत जिस गंभीरता से सार्वजनिक स्वास्थ्य खर्च और पर्यावरण गुणवत्ता के प्रवर्तन को एक विकसित राष्ट्र बनने की अपनी आकांक्षा के साथ जोड़ता है, वह यह तय करेगा कि विकसित भारत एक सपना बना रहता है या एक वास्तविकता बन जाता है।❑

# पड़ोस वह जगह है जहाँ हम गरिमा से रहते हैं।

❑

❑

**शाहना रफ़ीक़**

**दिल्ली यूनिवर्सिटी के श्री वेंकटेश्वर कॉलेज की शिक्षिका का समाज में पड़ोस के महत्व पर आत्मीय आलेख। सं.**

लंबे समय तक, मुझे लगता था कि पड़ोसी वे लोग होते हैं जो हमारे बगल में रहते हैं, जिनसे हम सीढ़ियों पर मिलते हैं, और सुबह की जल्दबाजी में कभी-कभी एक-दूसरे को नमस्ते करते हैं। जब मेरा माहौल बदला, तब मुझे एहसास हुआ कि एक पड़ोस किसी की रोज़मर्रा की ज़िंदगी, खुद के बारे में सोच और अपनेपन की भावना को कितनी गहराई से प्रभावित करता है।

मेरा जन्म और पालन-पोषण पुरानी दिल्ली के एक ऐसे इलाके में हुआ था, जहाँ ज़्यादातर मुसलमान रहते हैं। बचपन में मैंने इस बात पर जानबूझकर ध्यान नहीं दिया था; यह बस नॉर्मल था। हमारी रोज़मर्रा की ज़िंदगी में गलियों में गूंजती अज़ान की आवाज़, रमज़ान के दौरान जाने-पहचाने खाने की खुशबू, और एक-दूसरे के रूटीन की खामोश समझ शामिल थी। उस जगह पहचान को समझाने की ज़रूरत नहीं थी।

जब हम 2012 में पश्चिमी दिल्ली आए, तो बदलाव अजीब लगा। हालाँकि वह एक मिली-जुली जगह थी, लेकिन मुस्लिम परिवार कम और बिखरे हुए थे। इस नई जगह पर, त्योहारों से लेकर रोज़ाना के कामों तक, सब कुछ अनजान लग रहा था, और एडजस्ट करना मुश्किल लग रहा था। तो, घर खरीदने के लिए जगह ढूंढते समय मेरे माता-पिता ऐसी जगह चाहते थे जहाँ आस-पड़ोस में कम से कम कुछ मुस्लिम परिवार हों।

उस समय मुझे पूरी तरह समझ नहीं आया था कि यह क्यों ज़रूरी था। आठ साल बाद, अब मुझे समझ आ गया है। यह कभी सिर्फ़ धर्म के बारे में नहीं था, यह आराम, सुरक्षा और बिना लगातार खुद को समझाए ज़िंदगी जीने की आज़ादी के बारे में था।

हमारे अपने घर में शिफ्ट होने के एक साल के अंदर ही कुछ बदलने लगा। हमने उन लोगों के साथ ईद और दिवाली पर मिठाइयाँ बांटना शुरू कर दिया, जो पहले बिल्कुल अजनबी थे। त्यौहार प्राइवेट सेलिब्रेशन के बजाय सबके साथ मनाए जाने वाले मौके बन गए।

छोटे-छोटे रिश्ते अनजाने तरीकों से बनने लगे। मुझे मेहंदी लगाना अच्छा आता था, और पड़ोस की एक लड़की मेकअप में माहिर थी। समय के

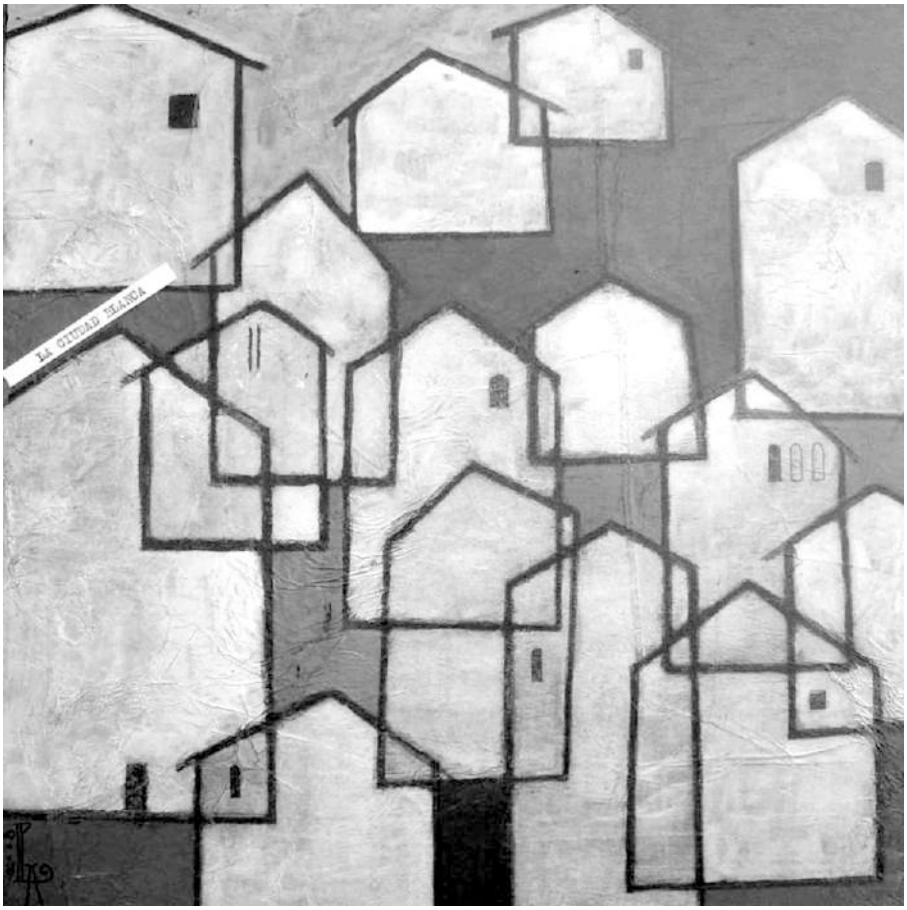


साथ, जब भी कोई फंक्शन होता, हम एक-दूसरे को बुलाने लगे। जो एक प्रैक्टिकल लेन-देन के तौर पर शुरू हुआ था, वह भरोसे और आपसी सपोर्ट पर बनी दोस्ती में बदल गया।

इसी तरह, क्योंकि मेरे परिवार में किसी को साड़ी पहनना नहीं आता था, तो हमारे ठीक बगल में रहने वाली एक आंटी हमेशा मदद के लिए आगे आती थीं। उन्होंने हमें कभी भी कल्चरल फर्क का एहसास नहीं होने दिया, वह यह जानते हुए कि मैं ईद पर उनके घर जाऊँगी, पहले से ही कुछ बनाकर रखती हैं। इसी तरह मैं भी दिवाली पर उनके हमारे घर आने का इंतज़ार करती हूँ।

ये लेन-देन भले ही छोटे लगें, लेकिन ये उस स्वीकार्यता को दिखाते हैं जो सिर्फ़ सहनशीलता से कहीं ज़्यादा है, एक ऐसी स्वीकार्यता जिसकी जड़ें देखभाल में हैं। एक मिक्स्ड इलाके में रहने से मैंने सीखा कि पास रहने से हमेशा कनेक्शन की गारंटी नहीं होती, लेकिन जब लोग इसके लिए तैयार होते हैं तो कनेक्शन मुमकिन होता है। हो सकता है कि हम एक ही धर्म, खाने की आदतें या परंपराएँ शेयर न करें, लेकिन हम रोज़मर्रा की ज़िंदगी शेयर करते हैं: त्यौहार, इमरजेंसी और चिंताएँ।

मैं देखती हूँ कि आस-पड़ोस में हाउसवाइफ एक-दूसरे के साथ कैसे रिश्ते बनाती हैं। रोज़मर्रा के घरेलू कामों की दुनिया में, ये बातचीत आम ज़िंदगी में कुछ खास रंग भर देती हैं। बालकनी में बातचीत, दोपहर के ब्रेक में साथ में हँसी-मज़ाक, और छोटी-मोटी बातें आम जगहों को ज़िंदा कम्युनिटी में बदल देती हैं। ये औरतें मिलकर सब्ज़ीवाले भैया के साथ मोलभाव भी करती हैं। ऐसी साथ मिलकर की जाने वाली एक्टिविटीज़ एकता और दोस्ती की भावना पैदा करती हैं। यही वो पल हैं जो किसी मोहल्ले को ज़िंदा रखते हैं। ये शारीरिक नज़दीकी को सामाजिक जुड़ाव में बदल देते हैं।

साथ ही, आस-पड़ोस भी चुपचाप व्यवहार को रेगुलेट करता है। जान-पहचान से सुरक्षित महसूस हो सकता है, लेकिन यह दखल देने वाला भी लग सकता है, खासकर महिलाओं के लिए। क्योंकि पड़ोसी बहुत मायने रखते हैं, इसलिए उनकी राय अक्सर परिवारों में अहमियत रखती है।

किसी भी ऐसे काम के लिए जो परिवार या समाज के माने हुए नियमों के खिलाफ हो, एक जानी-पहचानी चेतावनी होती है: हमारे पड़ोसी क्या कहेंगे? पड़ोसी शायद हमारे परिवार का हिस्सा न हों, लेकिन वे ऐसे लोग हैं जिन्हें हम रोज़ देखते हैं - हमारी दिनचर्या, पसंद और बदलावों के गवाह। उनकी मौजूदगी एक तरह की सामाजिक जवाबदेही बन जाती है, जो यह तय करती है कि लोग कैसा व्यवहार करेंगे, खासकर घनी आबादी वाले समुदायों में।

हमारा पड़ोस यह तय करता है कि हम कितना सुरक्षित और जुड़ा हुआ महसूस करते हैं, हम खुद को कितनी आज़ादी से व्यक्त करते हैं। शायद सबसे ज़रूरी सवाल यह नहीं है कि हमारे पड़ोसी कौन हैं, बल्कि यह है कि क्या हमारा पड़ोस हमें गरिमा के साथ जीने देता है।❑

# एआई बहुतों के लिए आर्थिक मंदी का सबब हो सकता है !

रिचर्ड सस्किंड

**एआई और इसके प्रभाव का पर्याय माने जाने वाले लेखक इस नई प्रौद्योगिकी के दोनों पक्ष बता रहे हैं। सं.**

सच तो यह है कि मशीनी बुद्धि – एआई – ने हमेशा इंसानों को बांटा है। 1950 के दशक के बीच से, जब 'आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस' शब्द पहली बार इस्तेमाल हुआ था, तब से इसके फ़ैन और क्रिटिक दोनों ही बराबर आवाज़ उठाते रहे हैं। इसके सपोर्टर और बुराई करने वालों के बीच का तनाव, अलग-अलग सोच वालों और वैज्ञानिकों के बीच होने वाले आम झगड़ों से कहीं ज़्यादा है। यहां बहुत ज़्यादा दांव पर लगा है क्योंकि साफ़ शब्दों में कहें तो एआई इंसानों और समाज के भविष्य को बहुत ज़्यादा तय करने वाला है।

लेकिन क्या एआई इंसानियत और सभ्यता का सबसे अच्छा उदाहरण है या उसका उल्टा? क्या आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस इंसानियत की सबसे बड़ी चुनौतियों, जलवायु परिवर्तन से लेकर ग्लोबल हेल्थ तक, का जवाब देगा? या यह बायोलॉजिकल इंसान के पतन का संकेत देता है? मेरे पास इन या कई दूसरे ज़रूरी सवालों के पक्के जवाब नहीं हैं जो एआई अब पूछ रहा है। हम सब अभी भी कुछ बहुत मुश्किल और बिना नक्शे वाले रास्तों से गुज़र रहे हैं। मुझे यह भी पता है कि आने वाले सालों में एआई से जुड़े ऐसे सवाल होंगे जिनके बारे में हम आज सोच भी नहीं सकते ऐसे सवाल जिनके बारे में हमने अभी तक सोचा भी नहीं है, जो उन समस्याओं से जुड़े हैं जो अभी तक उन सिस्टम से पैदा नहीं हुई हैं जिनका अभी तक आविष्कार नहीं हुआ है। आज हम मौजूदा और उभरती टेक्नोलॉजी की अपनी शुरुआती समझ से जो हेडलाइट्स की रोशनी डाल रहे हैं, उससे आगे नहीं देख सकते।

अनिश्चितता के इस भंवर में मेरी उम्मीद है कि इस आलेख को पढ़ने वालों को एआई के बारे में सोचने के अलग-अलग तरीके मिलेंगे। इनसे ज़्यादा जानकारी और बहस को बढ़ावा मिलना चाहिए। यह कोई तकनीकी बात नहीं है। मुझे लगता है कि इसके पाठकों को एआई और डिजिटल सिस्टम की कोई टेक्निकल जानकारी नहीं है। मेरा एक मकसद, सच में, आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस और इस

शानदार कॉन्सेप्ट के बारे में पब्लिक चर्चा को आसान बनाना है और यह भरोसा दिलाना है कि एआई के असर के बारे में समझदारी से सोचने और बात करने के लिए आपको टेक्नोलॉजी एक्सपर्ट होने की ज़रूरत नहीं है। मुझे उम्मीद है कि जब मैं बड़ी टेक्नोलॉजिकल दिलचस्पी और मुश्किल मुद्दों को छोड़ता हूँ तो कई साइंटिस्ट चौंक सकते हैं। मैं ऐसा हल्के में नहीं करता। हालांकि, मैं कहना चाहता हूं कि एआई और इसके असर के बारे में बहस हमेशा टेक्नोलॉजिकल डिटेल पर ही फोकस नहीं होनी चाहिए। मुझे यह लिखने की प्रेरणा तब मिली जब नवंबर 2022 के आखिर में चैट जीपीटी नाम के एक बहुत ही खास एआई सिस्टम के लॉन्च के बाद लोगों में बहुत जोश था। यह सिस्टम आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस की एक ब्रांच से जुड़ा है जिसे आम तौर पर 'जेनरेटिव अख' कहा जाता है (अभी इस बात की चिंता न करें कि इसका क्या मतलब है)। चैट जीपीटी ने दो महीनों में 100 मिलियन यूज़र्स को अपनी ओर खींचा और लॉन्च के एक साल के अंदर यह आंकड़ा लगभग दोगुना हो गया। इसके बाद कमेंट्स और अंदाज़ों की बाढ़ आ गई। फिर भी, जैसा कि मैं दिखाता हूँ, एआई के बारे में कई मौजूदा दावे और लोकप्रिय अनुमान उलझे हुए हैं। उदाहरण के लिए, इस फील्ड में नए कई लोगों को लगता है कि जेनरेटिव एआई आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस की दुनिया में आखिरी मंज़िल है। सच तो यह है कि हम अभी शुरुआत कर रहे हैं। एआई के लिए अभी शुरुआती दिन हैं।

मुझे चिंता है कि एआई पर बहस और पॉलिसी बनाने पर टेक्नोलॉजिस्ट और टेक एंटरप्रेन्योर का बहुत ज़्यादा असर पड़ रहा है। हालांकि उनमें से सबसे अच्छे लोगों के ज़बरदस्त टैलेंट को नकारा नहीं जा सकता, लेकिन कुछ लोग एथिक्स, सोशल इम्पैक्ट, इंटरनेशनल रिलेशन और रेगुलेशन जैसे मुद्दों पर बहुत ज़्यादा कट्टरता से अपनी बात रखते हैं। इसके अलावा, वे अक्सर इस बात में इतने उलझे रहते हैं कि वे खुद एआई कैसे और क्यों करते हैं, इसलिए वे इसके भविष्य और असर के बारे में भरोसे के साथ या बिना किसी भेदभाव के बात नहीं कर पाते। इंसानी इतिहास के इस खास मोड़ पर मेरा मकसद एआई के बारे में हमारी रोज़मर्रा की बातचीत में ज़्यादा क्लैरिटी लाना है, जिससे पता चलता है कि मेरा फोकस इस बात पर है कि हम, इंसान के तौर पर, एआई के बारे में कैसे सोच सकते हैं।

पहला रिस्क पावर से जुड़ा है। आम चिंता यह है कि टेक्नोलॉजी खुद (अक्सर चुपके से) और जो लोग एआई को कंट्रोल करते हैं (अक्सर लेकिन हमेशा जानबूझकर नहीं) इंसानों की पसंद पर बहुत ज़्यादा कंट्रोल कर सकते हैं, वे हमारी एक्टिविटीज़ की जांच कर सकते हैं, और वे हमारी सोच को बदल सकते हैं। वे हमारी सोशल और वर्किंग लाइफ़ (जैसे, सोशल मीडिया के हमारे इस्तेमाल में) के लिए तय पैरामीटर्स को कोड में फिक्स करके हमारी पसंद को कंट्रोल करते हैं। ऐसा करके, वे ऑप्शन्स को कम करके हमारे बिहेवियर को मजबूर करते हैं। वे लगातार निगरानी करके, 'हमारे बारे में छोटी-छोटी डिटेल्स इकट्ठा करके और स्टोर करके, और हमारे बिहेवियर के होने से पहले ही उसका अंदाज़ा लगाकर' हमारी जांच करते हैं।8 और वे 'दुनिया के बारे में हमारी जानकारी को फिल्टर करके, पॉलिटिकल एजेंडा सेट करके, हमारी सोच को गाइड करके, हमारी भावनाओं को भड़काकर, और हमारे भेदभाव को बढ़ावा देकर' हमारी सोच को आकार देते हैं। खास बात यह है कि यह दबदबा अभी 'बिना किसी जवाबदेही वाली पावर' से बना हुआ है। बड़ी टेक कंपनियों के पास ऐसे एआई

सिस्टम हैं जिन्हें समझना मुश्किल है और पावर, कैपिटल, डेटा, प्रोसेसिंग पर उनकी मज़बूत पकड़ है। इन कंपनियों का असर और असर देशों जैसा होता है। हालांकि, इस असर पर वैसा कंट्रोल नहीं होता जैसा सरकारों और सरकारी संस्थाओं पर होता है।

तीसरा, एआई से डेमोक्रेसी को कमज़ोर करने का खतरा है। इनमें से कुछ खतरे डेमोक्रेटिक जुड़ाव के प्रोसेस के लिए हैं। आजकल खास चिंता है, उदाहरण के लिए, एआई से बने 'डीपफेक' वीडियो क्लिप, ऑडियो रिकॉर्डिंग और इमेज जो बहुत असली लग सकती हैं लेकिन ज़िंदा लोगों की झूठी इमेज हो सकती हैं। जब ये लोग पॉलिटिशियन होते हैं, तो उनके विचारों के मनगढ़ंत वर्शन सोशल मीडिया पर यकीन दिलाने वाले और कभी वापस न आने वाले तरीके से, अक्सर वायरल तरीके से फैलाए जा सकते हैं। इसी तरह, पूरी तरह से मनगढ़ंत ऑनलाइन लोग बनाए जा सकते हैं, नकली अकाउंट का इस्तेमाल करके पॉलिटिशियन या एक्सपर्ट कमेंटेटर के तौर पर भरोसेमंद लोग, झूठी बातें फैलाते हैं। साथ ही, डेमोक्रेटिक बातचीत पब्लिक बहस को हमारी सोच में हेरफेर करके खराब किया जा सकता है। नुकसान पहुंचाने वाले अख से चलने वाले 'बॉट' (सॉफ्टवेयर जो अपने आप कुछ खास, अक्सर दोहराए जाने वाले काम करते हैं) सोशल मीडिया और वेब पर लगातार गलत जानकारी और गलत जानकारी फैला सकते हैं। इनका इस्तेमाल झूठ फैलाने, समाज में बेचैनी और आम दुख को बढ़ाने, नाराज़गी और अविश्वास को बढ़ावा देने और दुश्मनी भरे सामाजिक एक्शन को तेज़ करने के लिए किया जा सकता है। इन और दूसरे तरीकों से, सरकार का कोई भी रूप जो लोगों की मर्ज़ी से चलता है, वह रुक जाता है या असरदार तरीके से काम नहीं करता, क्योंकि लोग अब आज़ाद और सोच-समझकर फ़ैसले नहीं ले पाएंगे।

यह अंदाज़ा लगाया जा सकता है या इसका जवाब दिया जा सकता है कि बहुत ज़्यादा काबिल एआई सिस्टम के आने से हम एक पूरी तरह से नए इकोनॉमिक सिस्टम की ओर बढ़ेंगे, जिसमें ये सिस्टम प्रोडक्टिविटी में बहुत ज़्यादा बढ़ोतरी करेंगे, जिसका फ़ायदा बदले में पूरी इंसानियत में बड़े पैमाने पर बंटेगा। इस बात के सपोर्टर आने वाले 'बहुतायत' के दौर, और यहाँ तक कि सही तरीके से बांटी गई नई दौलत की भरमार के बारे में भरोसे के साथ बात करते हैं। इसके बजाय, दूसरे लोग इसे एक बड़ा खतरा मानते हैं।

हर कोई खुशी-खुशी न रहे, बल्कि वे कुछ टेक्नोलॉजी कंपनियों (जिनमें Apple, Alphabet (Google), Amazon, Meta (Facebook), और MicA°osoft शामिल हैं) के पास मौजूद इकोनॉमिक पावर के पक्के तौर पर मौजूदा कंसंट्रेशन की ओर इशारा करते हैं और चिंता करते हैं कि ये और भविष्य की अख कॉर्पोरेशन अपने शेयरहोल्डर्स के लिए रिटर्न की तुलना में सभी के लिए खुशहाली पक्का करने की कम चिंता करेंगी। हाँ, एआई से बहुत बड़ा आर्थिक फ़ायदा हो सकता है, लेकिन जब तक यह नई मिली दौलत लिस्टेड या प्राइवेट कंपनियों के कब्ज़े में है, तब तक यह उम्मीद करने का कोई कारण नहीं है कि कोई अनदेखा हाथ उन लोगों तक काफ़ी इनकम पहुँचाएगा जो अब नौकरी नहीं कर रहे हैं या नौकरी के लायक नहीं हैं। संक्षेप में, यहाँ रिस्क यह है कि एआई का मतलब होगा कि अमीर और अमीर हो जाएँगे, गरीब और गरीब हो जाएँगे, और अमीर और गरीब के बीच का अंतर बहुत ज़्यादा बढ़ जाएगा। इसका मतलब ज़्यादातर लोगों के लिए आर्थिक मंदी हो सकती है, साथ ही उन लोगों के साथ अमानवीय व्यवहार भी हो सकता है जिन्हें अब यह नहीं लगता कि वे समाज या अपने घरों में आर्थिक रूप से योगदान दे रहे हैं।

सोशल मीडिया पर हम पहले से ही बहुत ज़्यादा एंटीसोशल बिहेवियर झेल रहे हैं, जिन्हें एआई सिस्टम सीधे बढ़ा-चढ़ाकर दिखा सकते हैं या बना सकते हैंऐसा कंटेंट जो गाली-गलौज वाला और नफ़रत भरा हो, गलत और शोषण करने वाला हो, धमकी देने वाला और बुली करने वाला हो, बदनाम करने वाला और धोखा देने वाला हो, साथ ही धोखाधड़ी वाला और गैर-कानूनी भी हो। ऑनलाइन जो नुकसान पहले से हो रहे हैं, वे बहुत परेशान करने वाले हैं, खासकर जब इससे बच्चे प्रभावित हों। हम इस बात को लेकर भी परेशान हैं कि आने वाली पीढ़ियों को अकेले रहना पड़ेगा, स्क्रीन को घूरते रहना होगा या वर्चुअल रियलिटी में डूबे रहना होगा (हालांकि हम सोच सकते हैं कि किताबें पढ़ना शायद ही कभी बहुत अकेलेपन की वजह से बुरा माना जाता है)।❑

# साल का सबसे खराब जर्मन शब्द

❑

जर्मनी में जोंडरफेरमोएगेन शब्द का मतलब है, विशेष राशि या स्पेशल फंड। इसे जर्मनी में साल 2025 के सबसे खराब शब्द का तमगा मिला है। शब्द के भ्रामक इस्तेमाल की वजह है चुनाव।

गुजरे साल सरकार ने इस शब्द को खासा इस्तेमाल किया। संदर्भ रहा, जर्मनी में 'डेट ब्रेक' यानी, राजकीय कर्ज लेने पर लगी बंदिशें। इन पाबंदियों को ढीला करने के लिए संविधान में संशोधन किया गया। इसी क्रम में केंद्र सरकार ने जोंडरफेरमोएगेन को कई बार इस्तेमाल किया।

'डेट ब्रेक' जर्मन संविधान का अहम प्रावधान है, जिसके मुताबिक केंद्र और राज्यों का बजट सैद्धांतिक रूप से बिना कर्ज के संतुलित होना चाहिए। यानी, राज्य केवल उतना ही खर्च कर सकता है, जितनी रकम टैक्स और अन्य तरीकों से कमाता है।

सरकार ने संविधान सुधार के रास्ते डेट ब्रेक पर लगी पाबंदियों को तोड़कर बड़े राजकीय ऋण के लिए राह बनाई। अगले एक दशक में जलवायु संबंधी उपायों और बुनियादी ढांचे में बड़े निवेश के लिए 500 बिलियन यूरो का तथाकथित जोंडरफेरमोएगेन स्पेशल फंड बनाया गया।

फिलिप्स यूनिवर्सिटी मारबुर्ग की जूरी ने माना कि पिछले साल प्रचलित विमर्श में जिस तरह यह शब्द उपयोग हुआ, उसने दरअसल असल अभिप्राय को ढकने या अस्पष्ट करने का काम किया. और, इस शब्द का चालाकी भरा असर हुआ।

बोलचाल की भाषा में विशेष राशि का मतलब है, रकम की ऐसी स्पष्ट मात्रा जो कुल संपत्ति से अलग हो। वहीं, जर्मन सिस्टम के संदर्भ में कानूनी और आर्थिक रूप से देखें तो इसका अभिप्राय उस पूरक बजट से है, जो किसी खास लक्ष्य के लिए दिया जाए और इसकी फंडिंग कर्ज से की जाए।

यूनिवर्सिटी ने अपनी प्रेस रिलीजमें 'अनवर्ड ऑफ दी ईयर 2025' के चुनाव की वजह स्पष्ट करते हुए रेखांकित किया कि शब्द का तकनीकी ब्योरा और आम समझ में इसका मतलब, दोनों में फर्क है। स्पेशल एसेट्स (या, स्पेशल फंड) के दो भाग हैं: स्पेशल और एसेट्स। दूसरा हिस्सा, पैसा या किसी अन्य ठोस संपत्ति की विशाल मात्रा बताता है। वहीं, शब्द का पहला भाग स्पेशल संकेत देता है कि फलां चीज खास है।

ज्यूरी ने पाया कि आम विमर्श में इस प्रशासनिक शब्द का जिस आशय के साथ इस्तेमाल हुआ, वह अलग है। इसे राजनीतिक उपायों से जुड़ी बहसों में भी इस्तेमाल किया जा रहा है, जबकि बहुत से लोग इसके खास प्रशासनिक अर्थ को नहीं जानते हैं। ❑

❑

डॉ. लता व्यास

# सिनेमा को गरिमा देने वाले बेला टार्र नहीं रहे

हंगरी के मशहूर फिल्मकार बेला टार्र का 6 जनवरी को निधन हो गया। 21 जुलाई 1955 को जन्मे टार ने नोबेल-पुरस्कार विजेता उपन्यासकार लास्ज़लो क्रास्ज़नाहोरकाई के साथ भी सहयोग किया और उनके उपन्यास 'सैटेंटैंगो' पर उसी नाम की यादगार फिल्म बनाई।

टार्र ने टाइम-पास मनोरंजन वाली फिल्में नहीं बनाईं। उन्होंने ऐसी फिल्में बनाईं जो समय को चुनौती देती थीं। भाग-दौड़ के जुनूनी युग में, उन्होंने सिनेमा को इतना धीमा कर दिया कि वह सोचने पर मजबूर हो गया।

इस कलाकार ने सिखाया कि सिनेमा में समय को विस्तार देना कोई अति नहीं होती, और निराशा जब ईमानदारी से देखी जाती है, तो उसमें एक अनोखी गरिमा नजर आती है।

'सैटेंटैंगो', 'वेर्क मिस्टर हार्मनीज़' और 'द ट्यूरिन हॉर्स' जैसी कुछ फिल्मों के साथ, उन्होंने केवल फिल्मों का निर्माण ही नहीं किया, बल्कि सिनेमा के लिए एक नैतिक आधार भी तैयार किया। उनके काम में अक्सर अस्तित्ववादी विषय और चिंतनशील गति झलकती है। जैसए कुछ ही फिल्म निर्माताओं ने हमारे

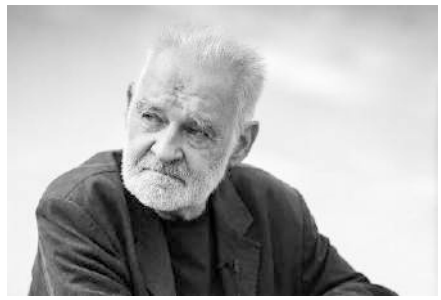

सिनेमा को देखने के तरीके को बदला है। उनके अवसान से विश्व सिनेमा ग़मगीन है। टार्र को 2022 में वे भारत आये थे जहां केरल के 27वें अंतर्राष्ट्रीय फिल्म महोत्सव में उन्हें लाइफटाइम अचीवमेंट पुरस्कार से सम्मानित किया गया था।❑

RS-CIT
एक परिपूर्ण कंप्यूटर कोर्स !

RS-CIT एक विस्तृत बेसिक कंप्यूटर कोर्स है जिसकी मदद से कंप्यूटर के आवश्य कौशल सीख कर कंप्यूटर पर कार्य करने में दक्षता हासिल की जा सकती है एवं विभिन्न डिजिटल सुविधाओं के उपयोग के बारे में जानकारी प्राप्त की जा सकती है

RS-CIT कंप्यूटर कोर्स ही क्यों ?

ई-लर्निंग पर आधारित, ऑडियो-विडियो कंटेंट तथा चरणबद्ध असेसमेंट
राज्य सरकार की विभिन्न सरकारी नौकरियों में एक पात्रता ।
शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्रों में लगभग 6500 ज्ञान केंद्र ।
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय कोटा द्वारा परीक्षा एवं प्रमाण पत्र ।

अन्य कोर्सेज

- Financial Accounting
- Spoken English & Personality Development
- Desktop Publishing
- Digital Marketing
- Advanced Excel
- Cyber Security
- Business Correspondence

Rajasthan Knowledge Corporation Limited
IT shapes future
(A Public Limited Company Promoted by Govt. of Rajasthan)

नजदीकी ज्ञान केंद्र के लिए www.rkcl.in पर विजिट करें
या 9571237334 पर WhatsApp करें

स्वत्त्वाधिकारी राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति द्वारा क्लासीफाइड प्रिण्टर्स, जयपुर में मुद्रित तथा 7-ए, झालाना संस्थान क्षेत्र, जयपुर-302004 से प्रकाशित। संपादक- राजेन्द्र बोड़ा

अनौपचारिका: पृष्ठ-28, फरवरी, 2026 रजिस्ट्रार ऑव न्यूज पेपर, नयी दिल्ली के द्वारा पंजीकृत मासिक पत्रिका RNI 43602/77 ISSN No.2581-981x


























सहयोग राशि के लिए
बैंक विवरण

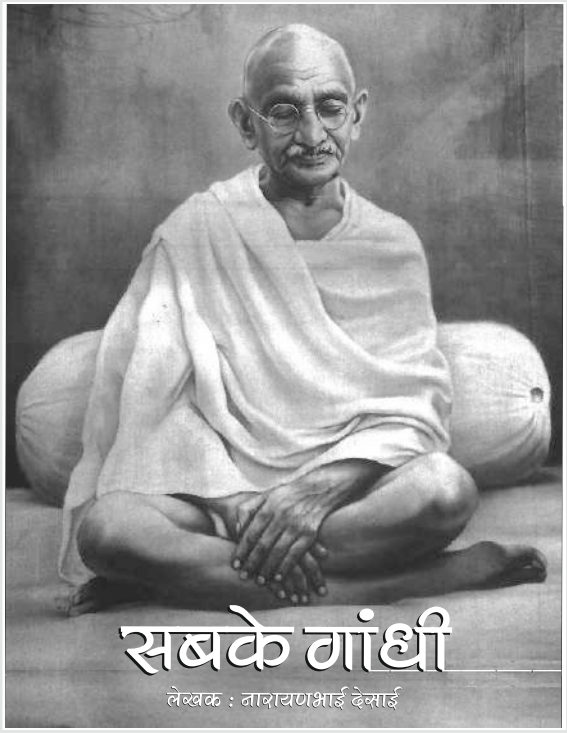

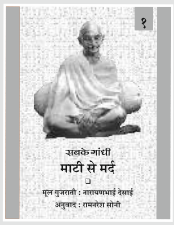

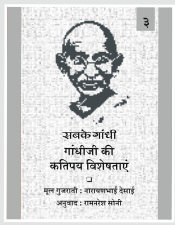

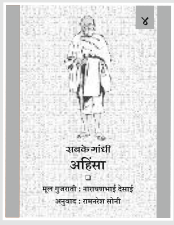

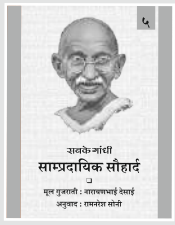

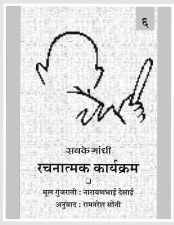

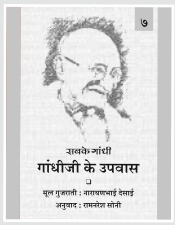

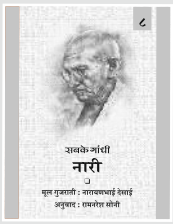

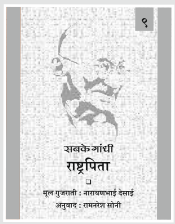

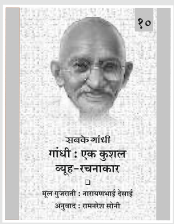

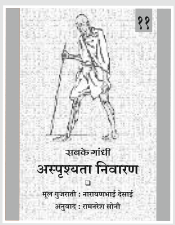

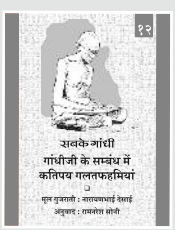

**BANK OF BARODA**
**Rajasthan Adult Education Association**
**Branch Name :** IDS Ext. Jhalana Jaipur
**I.F.S.C. Code :** BARB0EXTNEH
(Fifth Character is zero)
**Micr Code :** 302012030
**Acct.No. :** 98150100002077


















सबके गांधी

**राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति**
7—ए, झालाना संस्थान क्षेत्र,
जयपुर—302004

**राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति**
7—ए, झालाना संस्थान क्षेत्र,
जयपुर—302004

**12 पुस्तकों के एक सैट की सहयोग राशि रुपये 500/– मात्र डाक खर्च रुपये 75/– अलग से देय होगा।**